नवंबर, 2021

I.S.S.N. 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

प्रधान संपादक (प्रभारी)

श्री कमला कान्त

संपादक

श्री कमला कान्त
श्री अविनाश शुक्ला
श्री असलम खान

सहायक संपादक

श्री पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक

श्री महीपाल सिंह
श्री जसवन्त सिंह

ISSN-2457-0478

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 125/-

वार्षिक : ₹ 1,300/-

© 2021 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

आई.एस.एस.एन. 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

नवंबर, 2021 अंक - 11

प्रधान संपादक (प्रभारी)
श्री कमला कान्त

संपादक
असलम खान

(2021) 2 सि. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

Online selling of law Patrikas/Books is available on
Website → https://bharatkosh.gov.in/product/product

विक्रय कार्यालय : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001.
दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

जब कभी यह प्रश्न उठता है कि किसी भूमि में किसी व्यक्ति का सुखाधिकार का अधिकार सिद्ध हो जाता है तो क्या उसे उस भूमि के संबंध में स्थायी व्यादेश प्राप्त हो सकता है । इसी प्रकार के प्रश्न पर विचार करते हुए, माननीय छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय ने **प्रेम लाल यादव** बनाम **राजेन्द्र प्रसाद चन्द्रवंशी और अन्य** (2021) 2 सि. नि. प. 653 वाले मामले में, यह अभिनिर्धारित किया कि जब एक बार वादी का उक्त भूमि पर सुखाचार का अधिकार सिद्ध हो गया है और प्रतिवादी ने प्रथम अपील में उसका विरोध भी नहीं किया है तब ऐसी स्थिति में वादी स्थायी व्यादेश के पारिणामिक अनुतोष का हकदार है और प्रतिवादी सं. 1 को उक्त भूमि में हस्तक्षेप किए जाने से रोका जाएगा और बाधा/निर्माण हटाने संबंधी स्थायी व्यादेश मंजूर किया जाएगा अन्यथा न्यायिक कार्यवाहियों को बढ़ावा मिलेगा और यह विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 38(3)(घ) में अन्तर्विष्ट उपबंधों के प्रतिकूल होगा ।

यदि पत्नी ने बिना किसी युक्तियुक्त कारण के पति का साहचर्य छोड़ दिया है तो क्या बावजूद इसके पत्नी को दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की अर्जी मंजूर की जा सकती है । इसी प्रकार के प्रश्न पर विचार करते हुए, **लॉरेंस फिलिमोन डेनियल** बनाम **प्रणाली लॉरेंस डेनियल** (2021)2 सि. नि. प. 690 वाले मामले में, बम्बई उच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि अपीलार्थी-पति ने दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की अर्जी में यह कथन किया था कि सच्चाई जानने के पश्चात् भी उसने अपनी पत्नी को क्षमा कर दिया था और वह उसके साथ वैवाहिक संबंध बनाए रखना चाहता था, इस कथन पर विश्वास किया जा सकता था यदि उसने पत्नी के विरुद्ध कोई कार्यवाही न की होती, अतः यह स्वीकार करना संभव नहीं है कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने बिना किसी युक्तियुक्त कारण के पति का साहचर्य छोड़ा है, इसलिए दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की अर्जी खारिज करने वाला विचारण न्यायालय का निर्णय न्यायोचित है ।

प्रायः विधि आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अवयस्क की संपत्ति का विक्रय करने के बारे में विवाद उठते रहते हैं । इसी प्रकार के विवाद के प्रश्न पर विचार करते हुए, माननीय कर्नाटक उच्च न्यायालय द्वारा **एम. यशस (मास्टर)** बनाम **कोई नहीं** (2021) 2 सि. नि. प. 617 वाले मामले में, यह अभिनिर्धारित किया गया कि जहां अर्जीदार/अपीलार्थी ने अप्राप्तवय की संपत्ति का विक्रय करने की अर्जी अप्राप्तवय की विधिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नहीं अपितु अपने और अपने पति के वित्तीय संकट को दूर करने के लिए फाइल की है, अतः संपत्ति के विक्रय की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती और निचले न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

इस अंक में, राजभाषा अधिनियम, 1963 का हिन्दी पाठ भी प्रकाशित किया जा रहा है जो पाठकों के लिए ज्ञानवर्धक और अतिमहत्वपूर्ण है जिसका परिशीलन किया जा सकता है । उपर्युक्त निर्णयों के अतिरिक्त अन्य कई महत्वपूर्ण मुद्दों पर निर्णय प्रकाशित किए जा रहे हैं जो विधि-विद्यार्थियों, अधिवक्ताओं, न्यायाधीशों, विधि-अध्यापकों तथा विधि के ज्ञान में रुचि रखने वाले पाठकों के लिए अत्यंत लाभकारी साबित होंगे ।

असलम खान
संपादक

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

नवंबर, 2021

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
ए. एस. बिलाल **बनाम** ए. रईसा नसरीन	700
एम. यशस (मास्टर) **बनाम** कोई नहीं	617
कमल **बनाम** श्रीमती वर्षा	726
नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** रामफेर और एक अन्य	591
प्रेम लाल यादव **बनाम** राजेन्द्र प्रसाद चंद्रवंशी और अन्य	653
राजेन्द्र साहेबराव सानप **बनाम** लीना राजेन्द्र सानप	676
रुकनुद्दीन वल्द अकबर **बनाम** मैसर्स फर्म आसनदास लालचंद और अन्य	712
लॉरेंस फिलिमोन डेनियल **बनाम** प्रणाली लॉरेंस डेनियल	690
संजय अंबस्थव **बनाम** छत्तीसगढ़ राज्य और अन्य	666
सेठी पी. वी. **बनाम** कोई नहीं	635
सोमेन्द्र क्रिस्तो दत्त **बनाम** कोलकाता नगर निगम और अन्य	625

संसद् के अधिनियम

राजभाषा अधिनियम, 1963 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 – 18

पृष्ठ संख्या

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59)

– धारा 166 – मृतक के आश्रितों के द्वारा प्रतिकर के लिए आवेदन – अधिकरण द्वारा पारित अधिनिर्णय के विरुद्ध बीमाकर्ता की ओर से अपील – अपीलार्थी/बीमाकर्ता द्वारा जारी बीमा पालिसी सुसंगत समय पर विधिमान्य और प्रभावी सिद्ध हो जाने पर मोटर यान का स्वामी और बीमाकर्ता पर-व्यक्ति (तृतीय पक्षकार) के जोखिम के लिए संविदा के अधीन दायी होंगे ।

नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम **रामफेर और एक अन्य** 591

विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 (1869 का 4)

– धारा 32 – दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन हेतु अपीलार्थी/पति द्वारा विचारण न्यायालय के आदेश के विरुद्ध अपील – साथ ही पति द्वारा पत्नी के विरुद्ध उसके चरित्र को लेकर शिकायत दर्ज कराना – अपीलार्थी-पति ने दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की अर्जी में यह कथन किया था कि सच्चाई जानने के पश्चात् भी उसने अपनी पत्नी को क्षमा कर दिया था और वह उसके साथ वैवाहिक संबंध बनाए रखना चाहता था, इस कथन पर विश्वास किया जा सकता था यदि उसने पत्नी के विरुद्ध कोई कार्यवाही न की होती, अतः यह स्वीकार करना संभव नहीं है कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने बिना किसी युक्तियुक्त कारण के पति का साहचर्य छोड़ा है, इसलिए दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की अर्जी खारिज करने वाला विचारण न्यायालय का निर्णय न्यायोचित है ।

लॉरेंस फिलिमोन डेनियल बनाम **प्रणाली लॉरेंस डेनियल** 690

पृष्ठ संख्या

संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 (1890 का 8)

– धारा 7 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 9, नियम 4] – संरक्षकता – 7 वर्ष की अप्राप्तवय कन्या को संरक्षकता में लेने के लिए पिता द्वारा आवेदन फाइल किया जाना – पेश न होने के व्यतिक्रम के कारण आवेदन का ख़ारिज हो जाना – अपीलार्थी ने अपनी कन्या को अपनी अभिरक्षा में लेने के लिए गंभीर प्रयास नहीं किए हैं और कई तारीखों पर न्यायालय में अनुपस्थित भी रहा है और अनावश्यक मामले को लंबित रखा है ऐसी स्थिति में निचले न्यायालय द्वारा अपीलार्थी का आवेदन ठीक ही ख़ारिज किया गया है और अपीलार्थी अप्राप्तवय कन्या को अपनी संरक्षा में लेने का हक़दार नहीं है ।

ए. एस. बिलाल बनाम **ए. रईसा नसरीन** 700

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 21 – चिकित्सीय उपेक्षा – सरकारी अस्पताल के चिकित्सक द्वारा कोविड-19 के उपचार के दौरान गलत इंजेक्शन दिए जाने का आरोप – कोविड-19 के उपचार के लिए किसी भी औषधि का आविष्कार नहीं हुआ है और चिकित्सकों ने अपनी सर्वोत्तम क्षमता और ज्ञान के अनुसार इस रोग से पीड़ित रोगियों पर विभिन्न प्रकार के इंजेक्शनों का प्रयोग किया है और प्रत्येक अग्रिम तकनीक और अनुभव को बिना जोखिम उठाए प्राप्त नहीं किया जा सकता, अतः चिकित्सकों को याची की माता के उपचार में आई किसी भी प्रकार की उपेक्षा के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता ।

संजय अंबस्थव बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य और अन्य** 666

पृष्ठ संख्या

– अनुच्छेद 226 [सपठित कोलकाता नगर निगम अधिनियम, 1980 की धारा 199] – रिट – सूचीबद्धता प्रमाणपत्र इस आधार पर निरस्त किया जाना कि इसे जारी किए जाने से पूर्व किराएदार ने भू-स्वामी से सहमति नहीं ली थी – निगम द्वारा किराया बिलों के आधार पर सूचीबद्धता प्रमाणपत्र जारी किया जाना – किराएदार, नगर निगम द्वारा जारी किए गए प्रमाणपत्र के आधार पर उक्त परिसर में लम्बे समय से अपना व्यवसाय चला रहा है और अधिनियम के अधीन सहमति पत्र जारी किया जाना आवश्यक नहीं है, इसलिए सूचीबद्धता प्रमाणपत्र निरस्त किए जाने योग्य नहीं है ।

सोमेन्द्र क्रिस्तो दत्त बनाम **कोलकाता नगर निगम और अन्य** 625

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– धारा 96 [सपठित हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13ख] – पक्षकारों द्वारा पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद के लिए वाद फाइल करने की छह माह की कानूनी अवधि का उपबंध होना – कानूनी अवधि में छूट दिए जाने की मांग करना – यदि न्यायालय का यह समाधान हो जाता कि पक्षकारों ने पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद के लिए वाद फाइल किया है और उनके द्वारा प्रस्तुत तथ्य सुसंगत है तो न्यायालय वाद फाइल करने में कानूनी अवधि को माफ कर सकता है और पक्षकारों को छह मास की कानूनी अवधि से छूट देते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित कर सकता है ।

कमल बनाम **श्रीमती वर्षा** 726

पृष्ठ संख्या

– धारा 100 [सपठित राजस्थान परिसर अधिनियम, 1964 की धारा 13] – अपील – मालिक द्वारा दुकान किराए पर दिया जाना – मालिक द्वारा सद्भाविक आवश्यकता होने पर दुकान को किराएदार से मुक्त कराने की ईप्सा करना – किराएदार द्वारा दुकान खाली नहीं करना – बेदखली के लिए वाद फाइल किया जाना – यदि न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि दुकान मालिक को दुकान खाली कराने की सद्भाविक आवश्यकता है तो न्यायालय, किराएदार से दुकान खाली करने की डिक्री पारित कर सकता है ।

रुकनुद्दीन वल्द अकबर बनाम **मैसर्स फर्म आसनदास लालचंद और अन्य** 712

सुखाचार अधिनियम, 1882 (1882 का 5)

– धारा 13 [सपठित विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 38(3)(घ) और धारा 13(3)(घ)] – सुखाचार अधिकार और स्थायी व्यादेश का वाद फाइल किया जाना – वादी और प्रतिवादी का वाद भूमि पर संयुक्त रूप से निस्तार अधिकार रखना – वादी को उक्त भूमि पर सुखाचार का अधिकार दिया जाना किन्तु बाधा/निर्माण हटाने सम्बन्धी स्थायी व्यादेश मंजूर न किया जाना – जब एक बार वादी का उक्त भूमि पर सुखाचार का अधिकार सिद्ध हो गया है और प्रतिवादी ने प्रथम अपील में उसका विरोध भी नहीं किया है तब ऐसी स्थिति में वादी स्थायी व्यादेश के पारिणामिक अनुतोष का हकदार है और प्रतिवादी सं. 1 को उक्त भूमि में हस्तक्षेप किए जाने से रोका जाएगा और बाधा/निर्माण हटाने संबंधी स्थायी व्यादेश मंजूर किया जाएगा अन्यथा

पृष्ठ संख्या

न्यायिक कार्यवाहियों को बढ़ावा मिलेगा और यह अधिनियम, 1963 की धारा 38(3)(घ) में अन्तर्विष्ट उपबंधों के प्रतिकूल होगा ।

प्रेम लाल यादव बनाम **राजेन्द्र प्रसाद चंद्रवंशी और अन्य** 653

हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 (1956 का 32)

– धारा 8(2)(क) – अप्राप्तवय की संपत्ति – विक्रय की अनुज्ञा हेतु अर्जी – अर्जीदार/अपीलार्थी ने अप्राप्तवय की संपत्ति का विक्रय करने की अर्जी अप्राप्तवय की विधिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नहीं अपितु अपने और अपने पति के वित्तीय संकट को दूर करने के लिए फाइल की है, अतः संपत्ति के विक्रय की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती और निचले न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

एम. यशस (मास्टर) बनाम **कोई नहीं** 617

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25)

– धारा 13(1)(i-क)(iii) [सपठित कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19] – विवाह-विच्छेद – पत्नी द्वारा क्रूरता कारित किए जाने और उसकी मानसिक स्थिति ठीक न होने के आधार पर पति द्वारा विवाह-विच्छेद की अर्जी फाइल किया जाना – पति द्वारा अभिवाक् किया जाना कि पत्नी सिजौफ्रेनिया से पीड़ित थी – अभिलेख पर ऐसा कोई साक्ष्य नहीं पाया गया है कि जिससे यह साबित होता हो कि पत्नी सिजौफ्रेनिया से पीड़ित थी या उसका व्यवहार पति के प्रति

पृष्ठ संख्या

क्रूरतापूर्ण था, अतः इस आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित नहीं की जा सकती और निचले न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

राजेन्द्र साहेबराव सानप बनाम **लीना राजेन्द्र सानप** 676

– धारा 13ख और धारा 20(2) [सपठित केरल विधि व्यवसाय नियम, 1971 का नियम 23 और कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 23] – पारस्परिक सम्मति से विवाह-विच्छेद की अर्जी मुख़्तार के माध्यम से फाइल किया जाना – निचले न्यायालय द्वारा मुख़्तार को माध्यम बनाना स्वीकार न किया जाना – अर्जी वापस किया जाना – केरल उच्च न्यायालय द्वारा विरचित किए गए नियम और कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 23 के अधीन केरल सरकार द्वारा विरचित नियम मुख़्तारनामा धारक के माध्यम से कुटुंब न्यायालय के समक्ष अर्जी प्रस्तुत किए जाने को प्रतिषिद्ध नहीं करते हैं और मुख्तारनामा धारक कुटुंब न्यायालय के समक्ष पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद की अर्जी पर हस्ताक्षर कर सकता है, उसे फाइल कर सकता है और अभियोजन चला सकता है, अतः अर्जी वापस करने का निचले न्यायालय का आदेश न्यायोचित नहीं है ।

सेठी पी. वी. बनाम **कोई नहीं** 635

(2021) 2 सि. नि. प. 591 इलाहाबाद

नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

बनाम

रामफेर और एक अन्य

(2002 की प्रथम अपील सं. 349)

तारीख 12 फरवरी, 2019

न्यायमूर्ति विकास कुंवर श्रीवास्तव

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 166 – मृतक के आश्रितों के द्वारा प्रतिकर के लिए आवेदन – अधिकरण द्वारा पारित अधिनिर्णय के विरुद्ध बीमाकर्ता की ओर से अपील – अपीलार्थी/ बीमाकर्ता द्वारा जारी बीमा पालिसी सुसंगत समय पर विधिमान्य और प्रभावी सिद्ध हो जाने पर मोटर यान का स्वामी और बीमाकर्ता पर-व्यक्ति (तृतीय पक्षकार) के जोखिम के लिए संविदा के अधीन दायी होंगे ।

इस मामले में यह प्रथम अपील 1999 की मोटर दुर्घटना दावा आवेदन सं. 19 (रामफेर और एक अन्य बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड) में मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 166 के अधीन मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण/प्रथम अपर जिला न्यायाधीश, सुल्तानपुर द्वारा तारीख 28 फरवरी, 2002 को पारित निर्णय और अधिनिर्णय के विरुद्ध मोटर यान अधिनियम की धारा 178 के अधीन फाइल की गई है । विद्वान् मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण ने उस दावा आवेदक को 50,000/- रुपए का प्रतिकर प्रदान किया है जिसका पुत्र अर्थात् अजय कुमार वर्मा, आयु लगभग 18 वर्ष उल्लंघनकारी मोटर यान (टेम्पो यू.पी. 44 ए 9883) से दुर्घटनाग्रस्त हुआ था । दुर्घटना तारीख 17 अप्रैल, 1998 को प्रातः 9.00 बजे घटित हुई और उस समय उक्त टेम्पो को मृतक अजय कुमार वर्मा चला रहा था और टेम्पो का अचानक टायर फटने से वह पलट गया । मृतक अजय कुमार वर्मा टेम्पो से नीचे गिरने

के कारण गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त हो गया और उसकी मृत्यु हो गई । दावा आवेदन में यह अभिकथन किया गया है कि मृतक उक्त टेम्पो को चलाकर प्रतिमास 3,000/- रुपए मजदूरी के रूप में अर्जित कर रहा था । विद्वान् निचले न्यायालय ने उल्लंघनकारी मोटर यान अर्थात् टेम्पो के बीमाकर्ता (नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड) को यह निदेश दिया कि वह दावा आवेदक सं. 2 (मृतक की माता) को उक्त यान के स्वामी (बीमित व्यक्ति) की ओर से प्रतिकर का संदाय करे । इससे व्यथित होकर, नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड ने यह अपील फाइल की है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – चूंकि, यह साबित हो गया है कि अपीलार्थी द्वारा जारी बीमा पालिसी सुसंगत समय अर्थात् जब दुर्घटना घटित हुई थी, पर विधिमान्य और प्रभावी थी, इसलिए, निस्संदेह यह सिद्ध हो गया है कि मोटर यान के स्वामी और बीमा कंपनी तृतीय पक्षकार से संबंधित जोखिम के लिए संविदा के अधीन थे । यह न केवल संविदात्मक दायित्व है बल्कि विधि के अधीन भी है जिसके द्वारा बीमाकर्ता का दायित्व उद्भूत होता है । अपीलार्थी ने मोटर यान अधिनियम की धारा 149(2) के अधीन परिकल्पित किसी भी प्रतिरक्षा को सिद्ध नहीं किया है ताकि बीमाकर्ता अपने दायित्व से बच सके, इसलिए निचले न्यायालय ने अपीलार्थी द्वारा बीमित मोटर यान जब वह उपयोग में था, से दुर्घटना में हुई दुर्भाग्यपूर्ण मृत्यु के लिए अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा दावा आवेदकों को नुकसान पहुंचाने के लिए ठीक ही दायी ठहराया है । ऊपर की गई चर्चा को दृष्टिगत करते हुए मैंने 1999 की मोटर यान दावा आवेदन सं. 19 में विद्वान् मोटर यान दावा अधिकरण द्वारा तारीख 28 फरवरी, 2002 को पारित निर्णय और अधिनिर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाया है । इसलिए निर्णय और अधिनिर्णय कायम रखे जाने योग्य है । अपील खारिज की जानी चाहिए । अपीलार्थी-बीमा कंपनी को मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा तारीख 28 फरवरी, 2002 को पारित अपने निर्णय और अधिनिर्णय द्वारा एक माह के भीतर दावा आवेदक सं. 2/मृतक-अजय कुमार वर्मा की माता को वास्तविक संदाय की तारीख तक आवेदन की तारीख से प्रभार्य 6 प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर सहित यथा अधिनिर्णीत संपूर्ण प्रतिकर का संदाय करने का

निदेश दिया जाता है, जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर संबंधित विद्वान् मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण को वास्तविक संदाय तक आवेदन की तारीख से प्रभार्य शास्तिक ब्याज की 7 प्रतिशत वार्षिक दर पर उपरोक्त यथानिर्देशित अधिनिर्णीत राशि वसूली करने के लिए अपीलार्थी-नेशनल इंश्योरेंस कंपनी के विरुद्ध अधिनिर्णीत प्रतिकर की वसूली हेतु निष्पादन सहित कार्यवाही करने का निदेश दिया जाता है । यह भी निदेश दिया जाता है कि अपील फाइल करने के लिए अपीलार्थी द्वारा जमा की गई सांविधिक राशि और न्यायालय के आदेश के अधीन अपील लंबित रहने के दौरान जमा की गई कोई भी अन्य राशि दावेदार को संदाय करने के लिए अपीलार्थी से वसूल की जाने वाली अधिनिर्णीत राशि में समायोजित की जाएगी । (पैरा 23, 24, 26 और 27)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2005] 2005 (1) टी. ए. सी. 4 (एस. सी.) :
नेशनल इंश्योरेंस कंपनी बनाम **चल्ला भरथम्मा** ; 6

[2005] 2005 (2) टी. ए. सी. 6 (इलाहाबाद) :
चंद्रेश कुमार अग्रवाल बनाम **योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव और अन्य** ; 6

[2004] (2004) 3 एस. सी. सी. 297 :
नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य** ; 15, 17

[2003] (2003) 6 एस. सी. सी. 420 :
जितेन्द्र कुमार बनाम **ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य** । 16

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2002 की प्रथम अपील सं. 349.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्रीमती अलका वर्मा, और श्री हरि प्रकाश श्रीवास्तव

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री एस. एन. ओझा, और श्री अनिल कुमार मिश्रा

न्यायमूर्ति विकास कुंवर श्रीवास्तव – यह प्रथम अपील 1999 की मोटर दुर्घटना दावा आवेदन सं. 19 (रामफेर और एक अन्य बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड) में मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 166 के अधीन मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण/प्रथम अपर जिला न्यायाधीश, सुल्तानपुर द्वारा तारीख 28 फरवरी, 2002 को पारित निर्णय और अधिनिर्णय के विरुद्ध मोटर यान अधिनियम की धारा 178 के अधीन फाइल की गई है ।

2. विद्वान् मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण ने उस दावा आवेदक को 50,000/- रुपए का प्रतिकर प्रदान किया है जिसका पुत्र अर्थात् अजय कुमार वर्मा, आयु लगभग 18 वर्ष उल्लंघनकारी मोटर यान (टेम्पो यू.पी. 44 ए 9883) से दुर्घटनाग्रस्त हुआ था । दुर्घटना तारीख 17 अप्रैल, 1998 को प्रातः 9.00 बजे घटित हुई और उस समय उक्त टेम्पो को मृतक अजय कुमार वर्मा चला रहा था और टेम्पो का अचानक टायर फटने से वह पलट गया । मृतक अजय कुमार वर्मा टेम्पो से नीचे गिरने के कारण गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त हो गया और उसकी मृत्यु हो गई । दावा आवेदन में यह अभिकथन किया गया है कि मृतक उक्त टेम्पो को चलाकर प्रतिमास 3,000/- रुपए मजदूरी के रूप में अर्जित कर रहा था ।

3. विद्वान् निचले न्यायालय ने उल्लंघनकारी मोटर यान अर्थात् टेम्पो के बीमाकर्ता (नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड) को यह निदेश दिया कि वह दावा आवेदक सं. 2 (मृतक की माता) को उक्त यान के स्वामी (बीमित व्यक्ति) की ओर से प्रतिकर का संदाय करे ।

4. इससे व्यथित होकर नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड ने यह अपील फाइल की है जिसमें अपीलार्थी-नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड ने निम्नलिखित आधारों पर मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण के आक्षेपित निर्णय और अधिनिर्णय को चुनौती दी है :–

> "(1) यह कि मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण का निष्कर्ष अनुचित, त्रुटिपूर्ण तथा अधिनियम और विधि के उपबंध के विपरीत है ।

(2) अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का उचित रूप से मूल्यांकन नहीं किया गया है ।

(3) अपील को चुनौती देने में अपीलार्थी की मुख्य दलील, जैसा कि अपील के ज्ञापन में दिया गया है, यह है कि अपीलार्थी को दावेदारों की क्षतिपूर्ति करने के दायित्व से नहीं बांधा जा सकता क्योंकि प्रश्नगत यान मोटर यान अधिनियम और नियमों के उल्लंघन में चलाया जा रहा था ।

(4) इसके अतिरिक्त यह है कि उल्लंघनकारी यान बीमा पालिसी के निबंधनों और शर्तों का खंडन करते हुए चलाया जा रहा था ।

(5) आक्षेपित निर्णय और अधिनिर्णय को चुनौती देते हुए यह भी उद्भूत किया है कि मृतक के पास गैर-वाणिज्यिक मोटर यान को चलाने की अनुज्ञप्ति थी जबकि वह छह यात्रियों को ले जाते हुए टेम्पो चला रहा था ।

(6) यान चलाने का परमिट दुर्घटना की तारीख को विधिमान्य नहीं पाया गया क्योंकि मार्ग-परमिट की विधिमान्यता केवल जगदीशपुर से 25 किलोमीटर की परिधि के भीतर ही चलाने के लिए थी ।

(7) अंततः, मृत्यु स्वयं मृतक की योगदायी उपेक्षा के कारण हुई थी और क्योंकि उसने यान को उपेक्षापूर्वक चलाते हुए पलट दिया था और जिस कारण यान में पंचर हो गया था ।"

5. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री एच. पी. श्रीवास्तव और प्रत्यर्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री अनिल कुमार मिश्रा को सुना गया है और निचले न्यायालय के अभिलेख का परिशीलन किया गया है ।

6. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यान को चलाने का परमिट, मृतक टेम्पो चालक द्वारा की गई अनियमितताओं और अवैधताओं से संबंधित दलील के समर्थन में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय

अर्थात् **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी** बनाम **चल्ला भरथम्मा**[1] का अवलंब लिया है । उन्होंने आगे यह दलील दी है कि किसी भी यान के पास विधि के अधीन बीमा का प्रमाणपत्र, क्षेत्र परमिट होना चाहिए और इस आधार पर बीमा कंपनी पर प्रतिकर का संदाय करने का दायित्व डालना उचित नहीं होगा । यान के स्वामी दावेदारों को प्रतिकर का संदाय करने के लिए दायी ठहराया जाना चाहिए । माननीय उच्चतम न्यायालय के उक्त निर्णय का पैरा 12 और 13 इस प्रकार पुरःस्थापित किया जा रहा है :-

> "12. उच्च न्यायालय का यह मत था कि चूंकि उसके पास कोई परमिट नहीं था तो इससे संबंधित किसी भी शर्त के अतिक्रमण का प्रश्न उद्भूत नहीं होता है । यह मत स्पष्ट रूप से भ्रामक है । बिना परमिट यान चलाने वाले व्यक्ति को उस व्यक्ति की तुलना में बेहतर स्थिति में नहीं रखा जा सकता है और जिसके पास परमिट है भले ही उसने परमिट की किसी भी शर्त का उल्लंघन किया हो । बिना परमिट के यान चलाना एक व्यतिक्रम है । इसलिए, धारा 149(2) के निबंधनों में इस पहलू पर बीमाकर्ता के लिए बचाव उपलब्ध है । आधार की स्वीकार्यता न्यायनिर्णयन का मामला है । बीमाकर्ता के दायित्व के साथ इस तथ्य की कोई भी प्रासंगिकता नहीं है कि बीमा पालिसी उस समय प्रवर्ती थी । इसलिए, उच्च न्यायालय का बीमाकर्ता को दायी ठहराना न्यायोचित नहीं था ।
>
> 13. शेष प्रश्न यह है कि समुचित निदेश क्या होगा । अधिनियम के लाभकारी उद्देश्य पर विचार करते हुए, बीमा करता के लिए अधिनिर्णय का संज्ञान करना उचित होगा । यद्यपि विधि में इसका कोई दायित्व नहीं है । कुछ मामलों में बीमाकर्ता को बीमाकृत से राशि वसूल करने के लिए विकल्प और स्वतंत्रता दी गई है । स्वामी से संदत्त की गई धनराशि की वसूली यान स्वामी से करने के प्रयोजन के लिए, बीमाकर्ता को वाद फाइल करने की आवश्यकता नहीं होगी । बीमाकर्ता संबंधित निष्पादन न्यायालय के समक्ष कार्यवाही आरंभ कर सकता है जैसेकि अधिकरण के समक्ष

---

[1] 2005 (1) टी. ए. सी. 4 (एस. सी.).

बीमाकर्ता और स्वामी के बीच विवाद अवधारित किया जाना विषयवस्तु हो और मामला यान स्वामी के विरुद्ध और बीमाकर्ता के पक्ष में किया जा सकता है । दावेदारों को राशि जारी करने से पूर्व, उल्लंघनकारी यान का स्वामी सम्पूर्ण राशि के लिए प्रतिभूति प्रदान करेगा जिसका बीमाकर्ता दावेदारों को संदाय करेगा । उल्लंघनकारी यान को प्रतिभूति के एक भाग के रूप में कुर्क किया जाएगा । यदि निष्पादन न्यायालय आवश्यकता पड़ने पर संबंधित क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकरण की सहायता लेता है तो निष्पादन न्यायालय विधि के अनुसार समुचित आदेश पारित करेगा जिसमें यान का स्वामी बीमाकर्ता को संदाय करेगा । यदि कोई चूक होती है तब निष्पादन न्यायालय प्रस्तुत की जाने वाली प्रतिभूतियों के निपटान द्वारा या यान के स्वामी अर्थात् बीमाकृत की संपत्तियों से या किसी अन्य संपत्ति से वसूली करने का निदेश देने के लिए स्वतंत्र होगा । तत्काल मामले में कतिपय धनराशि की मात्रा पर विचार करते हुए हम यह विनिश्चय करने के लिए बीमाकर्ता के विवेक पर छोड़ देते हैं कि क्या वह बीमाकृत से राशि की वसूली करने के लिए कार्यवाही करेगा ।"

अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने इस न्यायालय के **चंद्रेश कुमार अग्रवाल** बनाम **योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए इस न्यायालय के निर्णय का भी अवलंब लिया है । माननीय न्यायालय ने उस मामले में निम्नानुसार मत व्यक्त किया है :–

"मैंने इस बिंदु पर पक्षकारों की ओर से दी गई अग्रिम दलीलों पर विचार किया है और बीमा कंपनी के विद्वान् काउंसेल की दलील में बल पाया है । ट्रक के स्वामी ने अधिकरण में स्पष्ट आरोपों के साथ यह फाइल किया कि प्रश्नगत तारीख को गोरखपुर में यान की मरम्मत की जा रही थी और परमिट सहित सभी दस्तावेजों को परमिट तथा फिटनेस प्रमाणपत्र इत्यादि सहित गोरखपुर में मार्ग परिवहन अधिकारी के कार्यालय में सुपुर्द कर दिया गया था । इसलिए, यह स्पष्ट है कि प्रश्नगत ट्रक को चालक

[1] 2005 (2) टी. ए. सी. 6 (इलाहाबाद).

द्वारा अनधिकृत तरीके से और पालिसी के निबंधनों और शर्तों के विरुद्ध मार्ग पर चलाया जा रहा था और इसी कारण से दुर्घटना घटी । नए अधिनियम की धारा 76 (पुराने अधिनियम की धारा 42) स्पष्ट रूप से यह उपबंध करती है कि परिवहन यान का कोई भी स्वामी क्षेत्रीय या राज्य परिवहन प्राधिकरण द्वारा दिए गए या प्रतिहस्ताक्षरित परमिट की शर्तों के अनुसार सार्वजनिक स्थान में यान का उपयोग या प्रयोग करने की अनुमति नहीं देगा । इसका अर्थ यह है कि विधिमान्य परमिट के बिना मार्ग पर परिवहन यान का चालन हो रहा है और फिटनेस प्रमाणपत्र विधि के अधीन प्रतिषिद्ध है । उच्चतम न्यायालय द्वारा स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया गया है कि बिना परमिट यान चलाने वाला व्यक्ति उस व्यक्ति से बेहतर नहीं हो सकता जो परमिट के साथ यान चलाता है भले ही उसने परमिट से संबंधित किसी शर्त का उल्लंघन किया हो । बिना परमिट के यान चलाना विधि का व्यतिक्रम है । इसलिए, धारा 149(2) के निबंधनों में उस पहलू पर बीमाकर्ता के लिए बचाव करना उपलब्ध है । यह भी अभिनिर्धारित किया गया है बीमाकर्ता के दायित्व के निर्धारण के लिए बीमा पालिसी का प्रवर्ती बने रहना सुसंगत नहीं है । इसलिए, ऐसे मामलों से संबंधित हाल ही में उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि को दृष्टिगत करते हुए, मेरा स्पष्ट रूप से यह मत है कि विद्वान् अधिकरण ने यान के स्वामी पर प्रतिकर संदाय करने का दायित्व डालने में विधि की त्रुटि कारित नहीं की है । मुझे इस बिंदु पर अधिकरण द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने का कोई ठोस आधार दिखाई नहीं देता है और यह अभिनिर्धारित किया कि ट्रक का स्वामी दावेदार का समाधान करने के लिए दायी है ।"

7. यह कहना असंगत नहीं होगा कि वर्तमान मामला मार्ग-परमिट के बिना मोटर यान चलाने का नहीं है ।

8. अभिलेख का परिशीलन करने पर एवं संबंधित दलीलों को सुनने

के पश्चात् यह तथ्य सामने आता है कि तारीख 17 अप्रैल, 1998 को टेम्पो (रजिस्ट्रेशन सं. यू.पी. 44 ए 9883) दुर्घटनाग्रस्त हो गया जिसमें चालक/अजय कुमार को क्षतियां पहुंचीं और बाद में उसकी मृत्यु हो गई और यह सब साबित हो गया है । विद्वान् निचले न्यायालय ने इस तथ्य पर विचार विवाद्यक सं. 2 और 4 में किया तथा साक्ष्यों के आधार पर यह पाया कि जब मृतक-अजय कुमार की आयु लगभग 18 वर्ष थी वह प्रश्नगत मोटर यान अर्थात् टेम्पो से यात्रियों को लेकर बी.एच.ई.एल. से जगदीशपुर के बीच यात्रा कर रहा था, अचानक से टेम्पो का टायर फट गया और टेम्पो पलट गया । चालक और टेम्पो में सवार यात्री नीचे गिर गए, इस दुर्घटना में चालक को गंभीर क्षतियां पहुंची । उसे पुलिस द्वारा घटनास्थल से अस्पताल लाया गया जहां से उसे मेडिकल कॉलेज, लखनऊ (के.जी.एम.यू.) भेज दिया गया लेकिन रास्ते में ही उसकी मृत्यु हो गई । प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों की परीक्षा की गई । पुलिस ने पंचनामा तैयार किया जो अभिलेख पर प्रस्तुत है । इसका मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण के समक्ष अपीलार्थी द्वारा अभिलेख दस्तावेजी या मौखिक रूप से इस तथ्य का कोई खंडन नहीं किया । इस प्रकार टायर फटने के कारण दुर्घटना हुई थी और टेम्पो के पलटने का तथ्य इस आधार पर साबित हो गया है । दुर्भाग्यवश चालक को इस दुर्घटना में पहुंची क्षतियों से उसकी मृत्यु हो गई । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई अग्रिम दलीलों का यह प्रभाव हुआ कि अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य का विद्वान् मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा उचित रूप से मूल्यांकन नहीं किया गया है । इस प्रकार अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री की संवीक्षा के साथ परीक्षा की जानी चाहिए है ।

9. मामले से संबंधित अन्य प्रासंगिक दलील इस प्रकार हैं कि :–

(i) प्रश्नगत यान मोटर यान अधिनियम और नियमों के उल्लंघन में चलाया जा रहा था ।

(ii) उल्लंघनकारी यान पालिसी के निबंधनों और शर्तों के उल्लंघन में चलाया गया था ।

(iii) मृतक के पास गैर-वाणिज्यिक यान चलाने की अनुज्ञप्ति थी, जबकि वह यात्रियों को लाने-ले-जाने के लिए चला रहा था ।

(iv) यान विधिमान्य मार्ग-परमिट के बिना चलाया जा रहा था ।

10. मोटर दुर्घटना दावा आवेदन के अभिलेख पर दावा आवेदकों द्वारा फाइल किए गए दस्तावेजी साक्ष्यों की सूची है जिसमें बीमा प्रमाणपत्र, चालन अनुज्ञप्ति, पंजीकरण Registration प्रमाणपत्र और मार्ग-परमिट सम्मिलित हैं । इसके अतिरिक्त, दावा आवेदकों ने (अभि. सा. 1) (मृतक के पिता/दुर्घटना से पीड़ित) के रूप में मौखिक साक्ष्य को प्रस्तुत किया है जिससे घटना साबित होती है और उसका साक्ष्य प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तथा अन्वेषण अधिकारी द्वारा तैयार की गई मृत्यु-समीक्षा रिपोर्ट से मेल खाता है । प्रत्यक्षदर्शी साक्षी राज बहादुर (अभि. सा. 2) और श्रीनाथ (अभि. सा. 3) की भी परीक्षा यह साबित करने के लिए कराई गई कि दुर्घटना कैसे घटित हुई । दस्तावेजी साक्ष्य के रूप में प्रश्नगत मोटर यान के बीमा प्रमाणपत्र, मार्ग-परमिट, पंजीकरण प्रमाण-पत्र प्रस्तुत किए गए । प्रथमदृष्ट्या वे सभी यह दर्शाते हैं कि वे सक्षम प्राधिकारी द्वारा विधिवत् रूप से जारी किए गए हैं और साथ ही दुर्घटना की सुसंगत तारीख को विधिमान्य और प्रभावी हैं । इसके अतिरिक्त, ऊपर उल्लिखित किए गए दस्तावेजों की सत्यता को नकारते हुए बीमा कंपनी की ओर से कोई खंडन नहीं किया गया है ।

11. यह देखा गया है कि बीमा कंपनियां प्रत्येक मामले में प्रतिकर के दावे से बचने के लिए, सामान्यतः रूढ़िबद्ध तरीके से, उनके समर्थन में अभिलेख पर किसी भी सामग्री पर ध्यान दिए बिना बचाव के अनेक तरीके अपनाती हैं । उदाहरणार्थ, जैसा कि वर्तमान मामले में, अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने निचले विद्वान् न्यायालय के समक्ष सुसंगत तारीख को कोई बीमा नहीं होने पर आपत्ति की है, बीमा पालिसी से यह साबित नहीं हुआ है कि यान, मोटर यान अधिनियम, 1988 के उपबंध के उल्लंघन में चलाया जा रहा था और पालिसी शर्तों का भी उल्लंघन किया जा रहा था, चालक के पास विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति नहीं थी, टेम्पो को कथित दुर्घटना के समय पंजीकरण प्रमाणपत्र, फिटनेस, परमिट आदि

के बिना चलाया गया, तथापि, बीमा पालिसी की फोटो-कॉपियां और चालन अनुज्ञप्ति पंजीकरण प्रमाणपत्र और मार्ग-परमिट के साथ साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत की गईं । ये सभी दस्तावेज विद्वान् मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण के समक्ष साबित हो गए थे, लेकिन इसका खंडन करने के लिए अपीलार्थी द्वारा कोई भी मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया, इस तथ्य के बावजूद मोटर यान अधिनियम की धारा 149(2) के अधीन उपलब्ध सभी आपत्तियों को अपनी प्रतिरक्षा के रूप में साबित करने का प्रारंभिक भार बीमा कंपनी पर था । तथापि, मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण ने दस्तावेजों की परीक्षा की और चालन अनुज्ञप्ति, पंजीकरण प्रमाणपत्र, मार्ग-परमिट और पर-व्यक्ति के बीमे और विवादक सं. 3 को विनिश्चित करते हुए यह पाया कि प्रश्नगत मोटर यान (विक्रम/टेम्पो) चेसिस सं. 41455 और इंजन सं. आर.डी. 88991 से संबंधित नेशनल बीमा कंपनी द्वारा बीमा प्रमाणपत्र, पंजीकरण प्रमाणपत्र के साथ जारी किया गया था । उक्त पंजीकरण प्रमाणपत्र तारीख 20 नवंबर, 1997 से 19 नवबंर, 1998 तक प्रभावी था, चूंकि दुर्घटना तारीख 17 अप्रैल, 1998 को घटित हुई थी, इसलिए दुर्घटना के सुसंगत समय पर प्रश्नगत टेम्पो अपीलार्थी-बीमा कंपनी की कवरेज अवधि के भीतर था । चूंकि, अपीलार्थी ने न तो बीमा पालिसी के किसी भी निबंधनों या शर्तों के उल्लंघन के रूप में विशिष्ट अभिवाक् किया है और न ही जाली चालन अनुज्ञप्ति का कोई मामला है, इसलिए जब दुर्घटना बीमा कवरेज अवधि के दौरान होना साबित हो गया है, तब तृतीय पक्षकार को हुई हानि के दायित्व से इनकार नहीं किया जा सकता । इसके अतिरिक्त, चालन अनुज्ञप्ति के संबंध में आपत्ति के रूप में वाणिज्यिक यान चलाने के लिए विधिमान्य नहीं है और इस प्रक्रम पर भी मान्य नहीं है क्योंकि इसे निचले न्यायालय/विद्वान् मोटर दुर्घटना अधिकरण के समक्ष नहीं रखा गया था ।

12. मोटर दुर्घटना के दावे का वर्तमान मामला 1998 से लंबित है, विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा तारीख 28 फरवरी, 2002 को निर्णय और अधिनिर्णय पारित किया गया था, तब से दावा आवेदक अपने अपूरणीय हानि के प्रतिकर की प्रतीक्षा कर रहे हैं क्योंकि उन्होंने लगभग

18 वर्ष की उम्र के अपने बेटे को एक दुर्भाग्यपूर्ण दुर्घटना में खो दिया है जो साक्ष्य के अनुसार टेम्पो का अचानक टायर फटने के कारण हुई है और एक तकनीकी, अनापेक्षित, अप्रत्याशित घटना है । दुर्घटना में मृतक/पीड़ित, जो उक्त मोटर यान को चला रहा था, की ओर कोई त्रुटि या उपेक्षा नहीं हुई थी । ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलार्थी ने इस अपील में चालन अनुज्ञप्ति, मार्ग-परमिट, पंजीकरण प्रमाणपत्र की अविधिमान्यता और अनियमितताओं आदि के रूप में मोटर यान अधिनियम की धारा 149(2) के अधीन यथाउपबंधित प्रतिरक्षा के लिए आपत्ति की है ।

13. मामले के तथ्यों और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन करने से यह स्पष्ट है कि यद्यपि अपीलार्थी ने बीमा पालिसी के निबंधनों के उल्लंघन में यान स्वामी की चूक के संबंध में किसी ऐसे व्यक्ति को यान चलाने की अनुमति दी जिसके पास विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति नहीं था और इस संबंध में अभी तक कोई भी विशिष्ट प्रतिरक्षा नहीं ली गई है और इस अपील में प्रथम बार यह अभिवाक् किया गया है और यह दर्शाने का प्रयत्न किया गया है कि यान का चालक प्रश्नगत यान को चलाने में सक्षम नहीं था ।

14. अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने बलपूर्वक यह दलील दी है कि मृतक-अजय कुमार वर्मा के पास वाणिज्यिक यान चलाने का चालन अनुज्ञप्ति नहीं था और उसके पास साधारण लाइसेंस था । यद्यपि यह अभिवाक् निचले न्यायालय के समक्ष नहीं किया गया था और न ही इसे साबित किया गया ।

15. इस संबंध में, **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान मामले की तरह ही विचार किया । माननीय उच्चतम न्यायालय के उक्त निर्णय का पैरा 64 निम्नानुसार है :–

> "64. ऐसा भी कोई मामला हो सकता है जहां चालक की चूक के बिना भी दुर्घटना हो जाती है । ऐसी घटना में, चालक के पास विधिमान्य लाइसेंस था या नहीं, यह प्रश्न अनावश्यक हो जाएगा ।"

---

[1] (2004) 3 एस. सी. सी. 297.

16. **जितेन्द्र कुमार** बनाम **ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य**[1] वाले मामले में जिसमें अपीलार्थी ने बीमा कंपनी से अपने यान का बीमा कराया था । न्यायालय ने इस पर निम्न प्रकार विचार किया है :–

> "अपीलार्थी, मारुति वैन (पंजीकरण सं. बी.आर. 2/5667) का स्वामी है और यह यान प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी से बीमाकृत है । अपीलार्थी का पक्षकथन यह है कि तारीख 25 अप्रैल, 1996 को लगभग रात्रि 9.30 बजे 'जहानाबाद' से 'गया' लौटते हुए प्रश्नगत यान में यांत्रिक कारणों से आग लग गई और उक्त आग के परिणामस्वरूप यान इतना जल गया कि उसकी मरम्मत नहीं हो सकती थी । इस आकस्मिक आग की सूचना तारीख 14 मई, 1996 को प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी को दी गई थी । उक्त सूचना मिलने के बाद, अपीलार्थी ने नुकसानी के संदाय के लिए प्रत्यर्थी के समक्ष दावा भी दर्ज कराया । बीमा कंपनी ने तारीख 10 दिसंबर, 1996 के अपने पत्र के अनुसार अपीलार्थी के उक्त दावे को केवल इस आधार पर अस्वीकार कर दिया कि चालक के पास प्रश्नगत दुर्घटना के समय विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति नहीं था ।
>
> अपीलार्थी के विद्वान् अधिवक्ता ने यह दलील दी कि राष्ट्रीय आयोग और राज्य आयोग ने यह निष्कर्ष निकालने में त्रुटि की है कि विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति धारण करना बीमा कंपनी से किसी भी क्षति का दावा करने हेतु पुरोभाव्य शर्त है भले ही प्रश्नगत दुर्घटना चालक के कृत्य या चूक न होने के कारण घटित हुई हो । उसने यह दलील दी कि **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय का निर्णय इस मामले के तथ्यों को किसी भी प्रकार से लागू नहीं होता है ।
>
> जहां तक इस मामले के तथ्यों का संबंध है, इसमें मुश्किल से ही कोई विवाद है, इसलिए, हम इस आधार पर निरापद रूप से कार्यवाही कर सकते हैं कि प्रश्नगत यान चालक की किसी चूक के कारण नहीं अपितु यांत्रिक त्रुटि के कारण क्षतिग्रस्त हुआ था । दलील के प्रयोजनार्थ, हम इस आधार पर भी कार्यवाही कर सकते

---

[1] (2003) 6 एस. सी. सी. 420.

हैं कि कार के चालक के पास विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति नहीं था । प्रश्न यह है कि क्या बीमा कंपनी उस यान, जिसका बीमा विधिवत् रूप से यान स्वामी द्वारा बीमा कंपनी से कराया गया था, के स्वामी द्वारा किए गए दावे को इस आधार पर भी अस्वीकार कर सकती है कि यान चालक जिसके पास विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति नहीं है, का दुर्घटना से कोई लेना-देना नहीं था ? हमारी राय में, इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक होना चाहिए । मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 149, जिस पर राज्य आयोग द्वारा अवलंब लिया गया था, दावा अस्वीकार करने में बीमा कंपनी की सहायता नहीं करती है क्योंकि यान चालक किसी भी तरह से दुर्घटना में योगदायी नहीं था । मोटर यान अधिनियम की धारा 149(2)(क)(ii) बीमा कंपनी को दावा अस्वीकार करने की शक्ति ऐसी स्थिति में प्रदान करती है जब प्रश्नगत यान दुर्घटना के कारण क्षतिग्रस्त हो जाता है और यान चालक जिसके पास भले ही विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति नहीं है किन्तु वह किसी भी प्रकार से दुर्घटना के लिए उत्तरदायी हो । यह धारा बीमा कंपनी को नुकसानी के दावे को अस्वीकार करने की शक्ति प्रदान नहीं करती है, जो ऐसे कृत्यों के कारण घटित हुई है जिसके लिए यान चालक किसी भी प्रकार से योगदायी नहीं है अर्थात् दुर्घटना चालक के कृत्य के बजाय अन्य कारणों से घटित हुई हो ।"

17. **स्वर्ण सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले का सुसंगत पैरा नीचे उद्धृत किया जा रहा है :–

"**धारा 149(7) के साथ पठित धारा 149(2) के निबंधनों में बीमाकृत को उपलब्ध प्रतिरक्षाओं का अधिकार और परिधि** – इसमें कोई संदेह या विवाद नहीं हो सकता है कि धारा 149(2) में वर्णित प्रतिरक्षा, बीमा कंपनियों के लिए उपलब्ध होगी, लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है और न ही हो सकता है कि ऐसी प्रतिरक्षा सिद्ध नहीं होने के बावजूद, वे कंपनियां अधिनियम की धारा 149(1) के अधीन अपने सांविधिक दायित्व को पूरा करने के लिए उत्तरदायी नहीं होंगी । इसके अतिरिक्त, यह उच्चतम न्यायालय द्वारा स्पष्ट निबंधनों में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि बीमा कंपनी के

लिए उपलब्ध प्रतिरक्षा सीमित होगी और धारा 149 (2) में अंतर्विष्ट आधारों से परे बीमाकर्ता द्वारा की गई अपील पोषणीय नहीं होगी ।"

धारा 149(2) के अधीन प्रतिरक्षा करना :

(i) **सबूत का भार** – विधि की प्रतिपादन सम्पूर्ण नहीं है और जो व्यक्ति भंग का अभिकथन करता है उसे ऐसे भंग को साबित करना चाहिए । इस प्रकार, बीमा कंपनी को ठोस साक्ष्य द्वारा उक्त उल्लंघन को सिद्ध करना चाहिए । इसके अतिरिक्त, अधिनियम की धारा 149 के उपबंध का एक मात्र परिशीलन करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि सामान्य नियम यह है कि जब एक बार बीमाकृत व्यक्ति यह साबित कर देता है कि यह दुर्घटना बीमे के अनिवार्य उपबंधों के अधीन आती है तब यह बीमाकर्ता का दायित्व होगा कि वह यह साबित करे कि घटना किसी अपवाद के अंतर्गत आती है । यदि बीमा कंपनी यह साबित करने में विफल रहती है कि बीमाकृत की ओर से पालिसी की शर्तों का उल्लंघन किया गया है तब बीमा कंपनी को उसके दायित्व से मुक्त नहीं किया जा सकता ।

(ii) शर्त का उल्लंघन दर्शित किया जाना चाहिए : धारा 149(2)(क) "पालिसी की विनिर्दिष्ट शर्त का उल्लंघन किया गया है", जैसे शब्दों के साथ आरंभ होती है जिसका यह अर्थ है कि कार्रवाई के लिए बीमाकर्ता की प्रतिरक्षा पालिसी के निबंधनों पर निर्भर करेगी । अपने दायित्वों से बचने की दृष्टि से बीमा कंपनी से न केवल यह दर्शाना अपेक्षित है कि वह धारा 149(2)(क) या (ख) के अधीन अधिकथित शर्तों से संतुष्ट हैं, बल्कि आगे यह सिद्ध करना भी अपेक्षित है कि बीमाकृत द्वारा नियमों का उल्लंघन हुआ है, अर्थात् उन्हें बीमित व्यक्ति द्वारा विधि का उल्लंघन साबित करना होगा । आपराधिक विधि, विशेषकर, अधिनियम के उपबंधों के उल्लंघन के परिणामस्वरूप बीमाकर्ताओं को दोषमुक्त किया

जा सकता है, किन्तु तृतीय पक्षकार के मामले में यह लागू नहीं होगा । किसी भी घटना में, अपवाद केवल जानबूझकर किए गए कार्यों पर लागू होता है या ;

(iii) दुर्घटना : कि पीड़ित को पहुंची क्षति उल्लंघन के कारण हुई, जिसे बीमाकृत की ओर से (जैसाकि ऊपर चर्चा की गई है) यह दर्शाने के लिए सिद्ध किया जाना चाहिए कि न केवल बीमाकृत ने अधिनियम के उल्लंघन में यान का उपयोग किया था या ऐसे उपयोग की अनुमति दी थी बल्कि यह भी साबित किया जाना चाहिए था कि पीड़ित को उल्लंघन से नुकसान हुआ है । जहां बीमाकर्ता चालक द्वारा विधिमान्य अनुज्ञप्ति रखने या सुसंगत अवधि के दौरान चालन करने के लिए उसकी योग्यता की बाबत पालिसी की शर्तों के संबंध में बीमाकृत की ओर से उल्लंघन को साबित करने में सक्षम है, वहां बीमाकर्ता को इससे बचने की अनुमति तब तक नहीं होगी जब तक कि बीमाकृत के प्रति यह न पाया जाए कि कारित दुर्घटना में उक्त भंग में योगदायी था । अधिनियम की धारा 149 (2) के अधीन बीमाकर्ता को उपलब्ध प्रतिभूति की अनुमति देने के लिए अधिकरण, पालिसी की शर्तों का निर्वचन करने में "मुख्य उद्देश्य के नियम" और "मौलिक भंग" के सिद्धांत को लागू करेंगे ।

(iv) सबूत की डिग्री जो प्रत्येक मामले में तथ्यों और परिस्थितियों के अतिरिक्त उपरोक्त आवश्यकता को पूरा करेगी, वह बीमा संविदा के निबंधनों पर निर्भर करेगी । बीमा, संविदा की परिधि में आता है । इस प्रकार, किसी भी अन्य संविदा की तरह पक्षकारों के आशय को उनमें प्रयुक्त अभिव्यक्तियों से जानना चाहिए । यदि पालिसी के नियम और शर्तें अस्पष्ट हैं, तब विलेख लिखे जाने के उद्देश्य से आसपास की परिस्थितियों के साथ-साथ पक्षकारों के आचरण को भी ध्यान में रखा जा सकता है । न्यायालय भी आसानी से छूट के सिद्धांत को बीमाकृत के पक्ष में और बीमाकर्ता के विरुद्ध लागू करती हैं । क्या जोखिम का परिवर्तन इतना बड़ा

था कि बीमा से बचा जा सके, यह सदैव मामले की परिस्थितियों के आधार पर न्यायालय के समक्ष प्रश्न होना चाहिए । बीमाकर्ता के भाग पर ऐसे भंग को बीमाकर्ता द्वारा यह सिद्ध किया जाना चाहिए कि न केवल बीमाकृत ने अधिनियम का भंग करते हुए यान का उपयोग किया है या उपयोग करने की अनुमति दी है बल्कि यह भी सिद्ध किया जाना चाहिए कि उसे जो नुकसान हुआ वह भंग के कारण हुआ है । यहां तक कि जहां बीमाकर्ता चालक द्वारा विधिमान्य अनुज्ञप्ति रखने या सुसंगत अवधि के दौरान यान चलाने के लिए उसकी योग्यता के संबंध में बीमाकृत द्वारा किए गए भंग को साबित करने में सक्षम है, तब भी बीमाकर्ता अपने दायित्व से बच नहीं सकता और वह केवल तब बच सकता है जब बीमाकृत द्वारा चालन अनुज्ञप्ति की शर्तों का भंग इतना मौलिक हो कि कारित दुर्घटना में चालक योगदायी रहा हो । बीमाकर्ता को बीमित व्यक्ति के प्रति बचने की अनुमति नहीं दी जाएगी तब तक पालिसी शर्तों का निर्वचन करने में, अधिकरण, अधिनियम की धारा 149(2) के अधीन बीमाकृत को उपलब्ध प्रतिरक्षा की अनुमति देने के लिए "मौलिक भंग" की अवधारणा और "मुख्य उद्देश्य के नियम" को लागू करेंगे ।"

18. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **स्वर्ण सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में यह चर्चा की है कि जिस व्यक्ति को एक प्रकार के यान को चलाने के लिए लाइसेंस दिया गया था परंतु वह सुसंगत समय पर दूसरे प्रकार के यान को चला रहा था । निर्णय का सुसंगत भाग निम्नानुसार है :–

"88. अधिनियम की धारा 10 के अधीन यान चलाने के लिए अनुज्ञप्ति के प्रारूपों और उनकी अन्तर्वस्तु का उपबंध किया गया है । अनुज्ञप्ति विहित प्रारूप में मंजूर किया जाना चाहिए । इस प्रकार, एक हल्के मोटर यान को चलाने के लिए दी गई अनुज्ञप्ति उस वर्ग या विवरण के भीतर चलाने के लिए हकदार बनाता है ।

89. अधिनियम की धारा 3 चालक पर उस यान के प्रकार के

लिए एक प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति धारण करने हेतु आबद्ध करती है जिस प्रकार के वाहनों को वह चलाने का आशय रखता है । अधिनियम की धारा 10 केंद्र सरकार को उक्त धारा की उपधारा (2) में उल्लिखित यानों की विभिन्न श्रेणियों के लिए चालन अनुज्ञप्ति के विहित प्ररूप नियत करने में सक्षम बनाती है । वर्णित यानों के विभिन्न प्रकार जिसके लिए चालक उनमें से एक या अधिक के लिए अनुज्ञप्ति प्राप्त कर सकता है, वे इस प्रकार हैं (क) बिना गियर वाली मोटरसाइकिल, (ख) गियर वाली मोटरसाइकिल, (ग) अवैध गाड़ी, (घ) हल्का मोटर यान, (ङ) परिवहन यान, (च) रोड रोलर और (छ) अन्य निर्दिष्ट विवरण के मोटर यान । अधिनियम की धारा 2 में परिभाषा संबंधी खंड यानों की विभिन्न श्रेणियों को परिभाषित करता है जो धारा 10 के उपखंड (ज) (2) में उल्लिखित व्यापक प्रकारों में आता है । वे 'माल वाहक', 'भारी माल-यान', 'भारी यात्री मोटर यान', 'अवैध गाड़ी', 'हल्का मोटर यान', 'मैक्सी-कैब', 'मध्यम माल-यान', 'मध्यम यात्री मोटर यान', 'मोटर-कैब', 'मोटरसाइकिल', 'ऑम्नी बस', 'निजी सेवा-यान', 'अर्ध-ट्रेलर', 'पर्यटक यान', 'ट्रैक्टर', 'ट्रेलर' और 'परिवहन यान' हैं । दुर्घटनाओं के प्रतिकर के दावों में, चालन अनुज्ञप्ति की शर्तों के संबंध में विभिन्न प्रकार के भंग अधिकरण के समक्ष विचार करने के लिए उद्भूत होते हैं । एक व्यक्ति जिसके पास 'बिना गियर वाली मोटरसाइकिल' की चालन अनुज्ञप्ति है, जिसके लिए उसके पास कोई अन्य अनुज्ञप्ति नहीं है । ऐसे मामले भी उद्भूत हो सकते हैं जहां 'हल्के मोटर यान' के लिए चालन अनुज्ञप्ति धारक को 'मैक्सी-कैब', 'मोटर-कैब' या 'ऑम्नी बस' चलाते हुए पाया जाता है जिसके लिए उसके पास कोई अनुज्ञप्ति नहीं है । अधिकरण के समक्ष अवलंब लिए गए प्रत्येक मामले में यह विनिश्चित किया जाना चाहिए कि क्या दुर्घटना का मुख्य या योगदायी कारण यह था कि चालक के पास किसी एक प्रकार का यान चलाने की अनुज्ञप्ति है, लेकिन वह दूसरे प्रकार का यान चलाते हुए पाया गया है । यदि तथ्यों पर यह पाया जाता है कि दुर्घटना पूरी तरह से कुछ अन्य अप्रत्याशित या अवरोधी कारणों

जैसे यांत्रिक विफलताओं और उसी प्रकार के अन्य कारणों, से हुई थी जिनका चालक के साथ कोई लेना-देना नहीं था और जिसके पास अपेक्षित अनुज्ञप्ति नहीं थी, तब बीमाकर्ता को केवल चालन अनुज्ञप्ति से संबंधित शर्तों के तकनीकी उल्लंघन के लिए अपने दायित्व से बचने की अनुमति नहीं दी जा सकती ।"

19. वर्तमान मामले में दावा आवेदकों द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य से यह सिद्ध हो गया है, जिसका अपीलार्थी द्वारा अभिखंडन नहीं किया गया था कि दुर्घटना अचानक टायर फटने के कारण घटित हुई थी, जिसके परिणामस्वरूप टेम्पो पलट गया, जिसमें चालक-अजय कुमार वर्मा यात्रियों से भरे हुए टेम्पो से नीचे गिर गया, जिससे उसे चोटें आईं और उसकी मृत्यु हो गई । यहां इस मामले में बीमा कंपनी द्वारा विशेष रूप से न तो अभिवाक् किया गया है और न ही यह साबित किया गया है कि बीमा पालिसी के किसी भी नियमों और शर्तों का उल्लंघन किया गया है जिसके आधार पर यह अभिनिर्धारित किया जा सके कि ऐसी चूक ही दुर्घटना का मुख्य कारण थी । अपील में ऐसे अभिवाक् को अभिवचन और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से परे प्रथम बार नहीं किया जा सकता ।

20. वर्तमान मामले में बीमा कंपनी ने मार्ग पर मोटर यान चलाने में पालिसी, निबंधनों और शर्तों या किसी विधि का अतिक्रमण किए जाने के किसी भी मौलिक उल्लंघन का निचले न्यायालय के समक्ष न तो अभिवाक् किया है और न ही उसे सिद्ध किया है । इसके अलावा, साक्ष्य के आधार पर मामला उपेक्षापूर्ण यान चलाने का नहीं पाया गया है, बल्कि अचानक टायर फटने के कारण दुर्भाग्यपूर्ण घटना उस समय घटित हुई जब प्रश्नगत बीमित टेम्पो सड़क पर चल रहा था । इस प्रकार, चालक द्वारा कोई गलती नहीं की गई, यह टायर फटने के कारण एक साधारण अप्रत्याशित दुर्घटना थी जो उस समय किसी के लिए भी अप्रत्याशित थी । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह तर्क दिया गया है कि चालक जो दुर्घटना में मृतक है, स्वयं गाड़ी चला रहा था, इसलिए उसके विधिक उत्तराधिकारियों को प्रतिकर नहीं दिया जा सकता है । मामले की गुणता या तर्कों पर ध्यान दिए बिना ही यह बताना प्रासंगिक होगा कि अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा जारी किया गया बीमा

प्रमाणपत्र यात्रियों और चालकों सहित तृतीय पक्षकार के जोखिम को भी लागू होता है जिसके लिए अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने बीमे का प्रीमियम (किस्त) प्राप्त किया है । तारीख 20 नंवबर, 1997 का बीमा प्रमाणपत्र जिसकी अवधि 20 नवंबर, 1997 से 19 नवंबर, 1998 तक प्रभावी थी, अभिलेख पर उपलब्ध है, इसलिए अपीलार्थी की उपरोक्त की दलील बिल्कुल निराधार है ।

21. आगे, 2018 की सिविल अपील सं. 2499-2500 [एस.एल.पी. (सिविल) से उद्भूत] में दो न्यायाधीशों (भारत के मुख्य न्यायमूर्ति माननीय दीपक मिश्रा और न्यायमूर्ति माननीय ए. एम. खानविलकर) की खंडपीठ द्वारा माननीय उच्चतम न्यायालय ने 2017 की विशेष इजाजत याचिका सं. 28141-42 (**मंगला राम** बनाम **द ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य**[1]) में तारीख 6 अप्रैल, 2018 के निर्णय द्वारा बीमा कंपनी के स्वामी और उसके उत्तरदायित्व पर चर्चा की है और यह सिद्ध नहीं हुआ है कि चालक द्वारा उपेक्षा कारित की गई थी । ऊपर उल्लिखित निर्णय का सुसंगत पैरा 22 निम्नानुसार है :–

> "22. **कौशनुमा बेगम** (उपरोक्त) वाले मामले में मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 163क के अधीन एक आवेदन पर कार्रवाई करते हुए इस न्यायालय ने यह स्पष्ट किया है कि उपेक्षा मोटर यान के उपयोग से हुई दुर्घटना के लिए केवल एक प्रकार का प्रतिकर है । ऐसे वाद-हेतुक के लिए अन्य आधार भी हैं । इसका अवलोकन करने के पश्चात्, न्यायालय ने राइलैंड्स **बनाम** फ्लेचर वाले मामले में वर्णित सिद्धांत का अवलंब लिया है । यह पैरा 12-14 पुर:स्थापित करना लाभप्रद होगा जो इस प्रकार है –
>
> > '12. भले ही चालक या मोटर यान के स्वामी द्वारा भाग पर कोई उपेक्षा न की गई हो, लेकिन दुर्घटना तब हुई जब यान का उपयोग किया जा रहा था तब ऐसी स्थिति में क्या यान स्वामी को उस व्यक्ति को नुकसानी दिए जाने के लिए दायी नहीं ठहराया जाना चाहिए जो ऐसी दुर्घटना में क्षतिग्रस्त हुआ था ? यह प्रश्न इस बात पर निर्भर करता है

[1] एस. एल. पी. (सिविल) सं. 28141-42/2017.

कि राइलैंड्स **बनाम** फ्लेचर वाले मामलें में अपनाया गया सिद्धांत मोटर दुर्घटना के मामलों में किस सीमा तक लागू हो सकता है । उक्त नियम को न्यायमूर्ति ब्लैकबर्न द्वारा संक्षेपित किया गया है, जो इस प्रकार है' –

> 'विधि का सत्य नियम यह है कि जो व्यक्ति अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिए और बच निकलने पर रिष्टि करने के लिए कुछ भी इकट्ठा कर लेता है और संभालकर रखता है, उसे अपनी विपत्ति के लिए रखना चाहिए और यदि वह ऐसा नहीं करता है तो वह प्रथमदृष्ट्या सभी नुकसानों के लिए उत्तरदायी होगा जो इसके बचने का स्वाभाविक परिणाम है । वह यह दर्शाते हुए स्वयं को माफ़ कर सकता है कि दुर्घटना स्वयं वादी की चूक से हुई है या संभवत:, यह दैव अपकृत्य या ईश्वर के कृत्य का परिणाम था ; लेकिन यहां ऐसा कुछ भी नहीं हुआ है, यह जांच करना आवश्यक है कि दुर्घटना का कारण क्या था ।'

13. हाउस ऑफ लॉर्ड्स ने इस पर विचार किया और निम्नलिखित कथन के साथ विनिश्चयाधार कायम रखा :

> 'हम यह सोचते हैं कि विधि का नियम यह है कि जो व्यक्ति अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिए जो कुछ भी इकट्ठा कर लेता है और उसे संभालकर रखता है, वह उसके जोखिम पर होगा और यदि वह ऐसा नहीं करता है तो वह प्रथमदृष्ट्या सभी नुकसानों के लिए उत्तरदायी होगा जो ऐसी चूक का स्वाभाविक परिणाम होगा । वह यह दर्शाते हुए स्वयं को माफ़ कर सकता है कि ऐसी चूक वादी की लापरवाही से हुई है या संभवत: ईश्वर के कृत्य का परिणाम है ; लेकिन जैसाकि यहां ऐसा कुछ भी विद्यमान नहीं है, इसलिए यह जांच करना आवश्यक है कि जिम्मेदारी से बचने का कौन-सा आधार पर्याप्त होगा ।'

14. अंतत:, उपरोक्त नियम को इंग्लैंड में न्यायालयों द्वारा बड़ी संख्या में दिए गए निर्णयों में स्वीकृति मिली ।

अपकृत्य पर विनफील्ड ने "रूल इन राइलैंड्स **बनाम** फ्लेचर" पर एक अध्याय भी लिखा है । विख्यात कृति के 15वें संस्करण के पृष्ठ 543 पर विद्वान् लेखक ने यह इंगित किया है कि "वर्षों से राइलैंड्स **बनाम** फ्लेचर का प्रयोग मामलों की कई विशिष्ट विविधता पर किया गया है : जैसे अग्नि, गैस, विस्फोट, बिजली, तेल, हानिकारक धुएं, कोलियरी स्पॉइल, अपकृक्ष बाड़ से जंग लगे तार, कंपन, जहरीली वनस्पति आदि ।"

उन्होंने राइलैंड्स **बनाम** फ्लेचर वाले मामले में अपनाए गए नियम के आधार पर की गई कार्रवाई के विरुद्ध सामान्य विधि में मान्यताप्राप्त सात बचावों को विस्तृत किया है । वे इस प्रकार हैं –

(1) (जोखिम लेने संबंधी) वादी की सहमति अर्थात् वोलेन्टी नॉन फिट इंजूरिया ।

(2) सामान्य लाभ अर्थात् वादी और प्रत्यर्थी के सामान्य लाभ के लिए खतरे का स्रोत बनाए रखा जाता है तब प्रतिवादी ऐसे पलायन के लिए दायी नहीं है ।

(3) अजनबी का कृत्य अर्थात् यदि पलायन किसी अजनबी के अप्रत्याशित कार्य के कारण हुआ है तो यह नियम लागू नहीं होगा ।

(4) सांविधिक प्राधिकार का प्रयोग अर्थात् नियम या तो तब लागू नहीं होगा जब कृत्य एक कानूनी कर्तव्य के अधीन किया गया हो या जब कानून अन्यथा उपबंध करता हो ।

(5) भगवान के कृत्य या दैविक अपकृत्य (विस मेजर) यानी ऐसी परिस्थितियां जिनके विरुद्ध कोई मानवीय दूरदर्शिता काम नहीं कर सकती और जिसकी संभावना को पहचानने के लिए मानव विवेक बाध्य न हो ।

(6) वादी की चूक अर्थात् यदि नुकसान केवल वादी के कृत्य या स्वयं की चूक से हुआ है, तो नियम लागू नहीं होगा ।

(7) परिणामों की दूरदर्शिता अर्थात् नियम अनंतकाल तक लागू नहीं किया जा सकता क्योंकि न्यायमूर्ति ब्लैकबर्न द्वारा बनाए गए नियम के अनुसार भी, प्रतिवादी केवल ऐसी सभी नुकसान के लिए जवाबदेह है "जो इसके पलायन का स्वाभाविक परिणाम है ।"

पुन:, न्यायालय ने चरण लाल साहू **बनाम** भारत संघ, (1990) 1 एस. सी. सी. 613 वाले मामले में, यूनियन कार्बाइड कार्पोरेशन **बनाम** भारत संघ, ए. आई. आर. 1989 एस. सी. 273 और गुजरात राज्य परिवहन निगम **बनाम** रमनभाई प्रभातभाई, ए. आई. आर. 1987 एस. सी. 1690 वाले निर्णयों के आधार पर इस प्रकार मत व्यक्त किया है :–

"19. किसी भी अन्य सामान्य विधि सिद्धांत की तरह जो हमारे न्यायशास्त्र के लिए स्वीकार्य है, राइलैंड्स **बनाम** फ्लेचर में अपनाए गए नियम का अनुसरण कम से कम तब तक किया जा सकता है जब तक कि कोई अन्य नया सिद्धांत विकसित नहीं किया जा सकता है, या जब तक विधान अलग से उपबंध नहीं करता है । इसलिए, हम मोटर दुर्घटनाओं की बाबत किए गए प्रतिकर के दावों में यह नियम अंगीकृत करने के लिए तैयार हैं ।

20. मोटर यान अधिनियम की धारा 140 में परिकल्पित 'त्रुटि न होने पर दायित्व का सिद्धान्त', 'कठोर दायित्व के सिद्धान्त' से भिन्न है । पूर्व में, प्रतिकर की राशि नियत होती है और संदेय होती है, भले ही नियम के अपवादों में से किसी एक को लागू किया जा सके । यह एक कानूनी दायित्व है जिसके सृजित हुए बिना दावेदार को उस गणना के अधीन कोई राशि नहीं मिलनी चाहिए । मोटर यानों के उपयोग से होने वाली दुर्घटना के कारण

प्रतिकर का दावा कानूनी सहायता के बिना भी सामान्य विधि के अधीन किया जा सकता है । मोटर यान अधिनियम के उपबंध यह अनुमति देते हैं कि "कोई त्रुटि न होने के दायित्व" के अधीन संदत्त किए गए प्रतिकर को अधिकरण द्वारा अधिनिर्णीत की गई अंतिम राशि से कटौती की जा सकती है । इसलिए, ये दोनों दो भिन्न-भिन्न परिसरों पर निर्भर कर रहे हैं । इसलिए हमारा यह मत है कि मोटर यान का उपयोग करके घटित दुर्घटना में मोटर यान अधिनियम की धारा 140 के अतिरिक्त पीड़ित अधिकरण से प्रतिकर पाने का तब तक हकदार है जब तक कि अपवादों में से कोई एक लागू न हो । इसलिए अधिकरण और उच्च न्यायालय ने प्रतिकर के दावेदारों को संदेय राशि विभाजित करने में त्रुटि की है ।"

22. इन सभी विवाद्यकों पर विचार करते हुए माननीय उच्चतम न्यायालय ने **स्वर्ण सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में बीमा कंपनियों द्वारा अपने दायित्व से बचने की दृष्टि से की गई प्रतिरक्षा की बाबत पैरा 39 से 42 में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है :–

"39. यह प्रश्न कि क्या कोई बीमाकर्ता अपने दायित्व से बच सकता है, यदि वह मोटर यान अधिनियम, 1939 की धारा 96 की उपधारा (2) के तत्स्थानी अधिनियम की धारा 149 की उपधारा (2) में परिकल्पित प्रतिरक्षा लेता है और यह मुद्दा अनेक मामलों में दिए जाने वाले विनिश्चयों की विषयवस्तु रहा है ।

40. यह किसी भी संदेह या विवाद से परे है कि अधिनियम की धारा 149 (2) के अधीन एक बीमाकर्ता जिसको प्रतिकर हेतु किसी कार्यवाही को आरंभ करने के संबंध में नोटिस दिया गया है वह उसमें उल्लिखित किसी भी आधार पर कार्रवाई से प्रतिरक्षा कर सकता है ।

41. तथापि, खंड (क) इन शब्दों के साथ शुरू होता है कि "पालिसी की एक निर्दिष्ट शर्त का उल्लंघन किया गया है", जिसका अर्थ है कि बीमाकर्ता पालिसी के निबंधनों के आधार पर ही प्रतिरक्षा ले सकता है । उक्त उपखंड में 3 शर्तें वियोजनात्मक हैं

अर्थात्, बीमाकर्ता दायित्व से तब बच सकता है जब (क) एक नामित व्यक्ति यान चलाता है ; (ख) यह एक ऐसे व्यक्ति द्वारा चलाया जा रहा हो जिसके पास विधिमान्य अनुज्ञप्ति नहीं है ; और (ग) चालक, चालन अनुज्ञप्ति धारित या प्राप्त करने के लिए निरर्हित व्यक्ति हो ।

42. हम इस तथ्य पर भी ध्यान दे सकते हैं कि धारा 3 में प्रयुक्त शब्द 'प्रभावी अनुज्ञप्ति' को धारा 149 (2) में इससे भिन्न शब्दों अर्थात् 'विधिवत् अनुज्ञप्ति' के रूप में लिखा गया है । यदि किसी व्यक्ति के पास दुर्घटना की तारीख को प्रभावी अनुज्ञप्ति नहीं है, तो वह अधिनियम की धारा 149 के निबंधनों में अभियोजन के लिए दायी हो सकता है, लेकिन धारा 149 पर-व्यक्ति के जोखिमों की बाबत बीमे से संबंधित है ।"

23. चूंकि, यह साबित हो गया है कि अपीलार्थी द्वारा जारी बीमा पालिसी सुसंगत समय अर्थात् जब दुर्घटना घटित हुई थी, पर विधिमान्य और प्रभावी थी, इसलिए, निस्संदेह, यह सिद्ध हो गया है कि मोटर यान के स्वामी और बीमा कंपनी तृतीय पक्षकार से संबंधित जोखिम के लिए संविदा के अधीन थे । यह न केवल संविदात्मक दायित्व है बल्कि विधि के अधीन भी है जिसके द्वारा बीमाकर्ता का दायित्व उद्भूत होता है । अपीलार्थी ने मोटर यान अधिनियम की धारा 149(2) के अधीन परिकल्पित किसी भी प्रतिरक्षा को सिद्ध नहीं किया है ताकि बीमाकर्ता अपने दायित्व से बच सके इसलिए, निचले न्यायालय ने अपीलार्थी द्वारा बीमित मोटर यान जब वह उपयोग में था, से दुर्घटना में हुई दुर्भाग्यपूर्ण मृत्यु के लिए अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा दावा आवेदकों को नुकसान पहुंचाने के लिए ठीक ही दायी ठहराया है ।

24. ऊपर की गई चर्चा को दृष्टिगत करते हुए, मैंने 1999 की मोटर यान दावा आवेदन सं. 19 (रामफेर और अन्य बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड) में विद्वान् मोटर यान दावा अधिकरण द्वारा तारीख 28 फरवरी, 2002 को पारित निर्णय और अधिनिर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाया है । इसलिए, निर्णय और अधिनिर्णय कायम रखे जाने योग्य हैं, अपील खारिज की जानी चाहिए ।

25. यह अपील खारिज की जाती है, अंतरिम रोक आदेश, यदि कोई हो, अपास्त किया जाता है । 1999 की मोटर दुर्घटना दावा आवेदन सं. 19 में सुल्तानपुर के प्रथम अतिरिक्त जिला न्यायाधीश/मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा तारीख 28 फरवरी, 2002 को पारित निर्णय और अधिनिर्णय की पुष्टि की जाती है ।

26. अपीलार्थी-बीमा कंपनी को मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा तारीख 28 फरवरी, 2002 को पारित अपने निर्णय और अधिनिर्णय द्वारा एक माह के भीतर दावा आवेदक सं.2/मृतक-अजय कुमार वर्मा की माता को वास्तविक संदाय की तारीख तक आवेदन की तारीख से प्रभार्य 6 प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर सहित यथाअधिनिर्णीत संपूर्ण प्रतिकर का संदाय करने का निदेश दिया जाता है, जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर संबंधित विद्वान् मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण को वास्तविक संदाय तक आवेदन की तारीख से प्रभार्य शास्तिक ब्याज की 7 प्रतिशत वार्षिक दर पर उपरोक्त यथानिर्देशित अधिनिर्णीत राशि वसूली करने के लिए अपीलार्थी-नेशनल इंश्योरेंस कंपनी के विरुद्ध अधिनिर्णीत प्रतिकर की वसूली हेतु निष्पादन सहित कार्यवाही करने का निदेश दिया जाता है ।

27. यह भी निदेश दिया जाता है कि अपील फाइल करने के लिए अपीलार्थी द्वारा जमा की गई सांविधिक राशि और न्यायालय के आदेश के अधीन अपील लंबित रहने के दौरान जमा की गई कोई भी अन्य राशि दावेदार को संदाय करने के लिए अपीलार्थी से वसूल की जाने वाली अधिनिर्णीत राशि में समायोजित की जाएगी ।

28. रजिस्ट्री को यह निदेश दिया जाता है कि वह निचले न्यायालय का अभिलेख संबंधित न्यायालय को वापस भेजे ।

अपील खारिज की गई ।

मही./अस.

एम. यशस (मास्टर)

बनाम

कोई नहीं

(2021 की प्रकीर्ण प्रथम अपील सं. 1990)

तारीख 23 अप्रैल, 2021

न्यायमूर्ति बी. वी. नागरत्न और न्यायमूर्ति जे. एम. काजी

हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 (1956 का 32) – धारा 8(2)(क) – अप्राप्तवय की संपत्ति – विक्रय की अनुज्ञा हेतु अर्जी – अर्जीदार/अपीलार्थी ने अप्राप्तवय की संपत्ति का विक्रय करने की अर्जी अप्राप्तवय की विधिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नहीं अपितु अपने और अपने पति के वित्तीय संकट को दूर करने के लिए फाइल की है, अतः संपत्ति के विक्रय की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती और निचले न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

इस मामले में अप्राप्तवय बालक अर्थात् मास्टर यशस जो लगभग बारह वर्ष की आयु का है, की माता द्वारा हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 8 (2) (क) के अधीन एक अर्जी फाइल की गई थी जिसमें अपने अप्राप्तवय बच्चे के नाम में निष्पादित अर्जी-अनुसूचित-संपत्ति के विक्रय की अनुज्ञा की ईप्सा की थी और उक्त विक्रय से प्राप्त 15,00,000/- रुपए के आगम में से कुछ राशि का उपयोग उसके अप्राप्तवय बच्चे के दैनिक व्यय, विद्यालय व्यय आदि को पूरा करने और शेष विक्रय की शेष राशि को उसके अप्राप्तवय के नाम पर जमा करने के उद्देश्य से की थी । विचारण न्यायालय ने तारीख 28 जनवरी, 2021 के आक्षेपित आदेश द्वारा अर्जी को खारिज कर दिया । इसलिए अपील प्रस्तुत की गई । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अप्राप्तवय मास्टर यशस के माता-पिता और नैसर्गिक

संरक्षक होने के नाते, यह अर्जीदार/अपीलार्थी और उसके पति का कर्तव्य और उत्तरदायित्व है कि वे उसकी शिक्षा और अन्य व्ययों सहित उसकी देखभाल करे । अपने वित्तीय संकट को दूर करने के लिए वे अप्राप्तवय की संपत्ति को व्ययनित नहीं कर सकते हैं और विक्रय आगमों के किसी भाग का उपयोग अपने स्वयं के व्ययों और अप्राप्तवय के व्ययों के लिए तथा शेष राशि को भविष्य में अप्राप्तवय के उपयोग के लिए उसके नाम पर जमा नहीं कर सकते हैं । अप्राप्तवय की विधिक आवश्यकता में संरक्षक या किसी अन्य व्यक्ति की आवश्यकता, कोविड-19 जैसी महामारी में भी, सम्मिलित नहीं है । निश्चित रूप से, आशयित अर्जी अनुसूची संपत्ति का हस्तांतरण करना अप्राप्तवय की सम्पदा के फायदे के लिए नहीं है । अप्राप्तवय की संपदा को लाभ तब होता जब यह असाधारण रूप से अच्छी कीमत प्राप्त कर रहा होता और तब इसे मृत निवेश के रूप में रखने के बजाय इसका विक्रय करना लाभकारी होता । अप्राप्तवय की विधिक आवश्यकता तब होती, जब अप्राप्तवय की शिक्षा या अन्य आसन्न आवश्यकताओं के लिए संपत्ति का निपटान अपेक्षित होता है । अप्राप्तवय के नाम पर चल रही संपत्ति की अनुपस्थिति में भी, अर्जीदार/अपीलार्थी और उसका पति, अप्राप्तवय के माता-पिता और नैसर्गिक संरक्षक होने के नाते उसकी देखभाल करने के लिए बाध्य हैं । इस तरह के मामले में, वे अप्राप्तवय की संपत्ति का उपयोग अपने लाभ के लिए यह दलील देते हुए नहीं कर सकते हैं कि कोविड-19 महामारी की स्थिति के कारण, उनके लिए उक्त का विक्रय करना अपरिहार्य हो गया हैं । चूंकि अर्जीदार/अपीलार्थी वित्तीय संकट से निपटने के लिए विक्रय आगमों में से 15,00,000/- रुपए का उपयोग करने के उद्देश्य से तथा शेष राशि को अप्राप्तवय के नाम में जमा करने के लिए अर्जी-अनुसूचित-संपत्ति का विक्रय करने हेतु अनुज्ञा की ईप्सा कर रही है, इसलिए यह स्पष्ट है कि इस संबंध में कोई भी अभिवाक् नहीं किया गया है कि आशयित हस्तांतरण अप्राप्तवय के सुव्यक्त लाभ के लिए आवश्यक है । न तो विचारण न्यायालय और न ही इस न्यायालय के समक्ष यह अभिनिर्धारित करने के लिए कोई भी सामग्री है कि आशयित हस्तांतरण अप्राप्तवय की आवश्यकता या सुव्यक्त लाभ के लिए है । (पैरा 22, 23 और 24)

अपीली सिविल अधिकारिता : 2021 की प्रकीर्ण प्रथम अपील सं. 1990.

2020 की जी. एंड डब्ल्यू.सी. सं. 16 में नवें अपर प्रधान जिला न्यायाधीश, बेंगलुरु (ग्रामीण), बेंगलुरु द्वारा तारीख 28 जनवरी, 2021 को पारित आदेश के विरुद्ध हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 धारा 8(2)(क) के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री गौतम लक्ष्मीकान्त जी.

प्रत्यर्थी की ओर से कोई नहीं

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति जे. एम. काजी ने दिया ।

न्या. काजी – इस अपील के अधीन नवें अपर प्रधान जिला न्यायाधीश, बेंगलुरू ग्रामीण, बेंगलुरू द्वारा जी. एंड डब्ल्यू. सी. सं. 16/2020 में पारित तारीख 28 जनवरी, 2021 के आदेश की शुद्धता को चुनौती दी गई है ।

2. उक्त अर्जी अप्राप्तवय बालक अर्थात् मास्टर यशस जो लगभग बारह वर्ष की आयु का है, की माता द्वारा हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 8 (2) (क) के अधीन फाइल की गई थी, जिसमें अपने अप्राप्तवय बच्चे के नाम में निष्पादित अर्जी-अनुसूचित-संपत्ति के विक्रय की अनुज्ञा की ईप्सा की थी और उक्त विक्रय से प्राप्त 15,00,000/- रुपए के आगम में से कुछ राशि का उपयोग उसके अप्राप्तवय बच्चे के दैनिक व्यय, विद्यालय व्यय आदि को पूरा करने और शेष विक्रय की शेष राशि को उसके अप्राप्तवय के नाम पर जमा करने के उद्देश्य से की थी । विचारण न्यायालय ने तारीख 28 जनवरी, 2021 के आक्षेपित आदेश द्वारा अर्जी को खारिज कर दिया । इसलिए यह अपील प्रस्तुत की गई है ।

3. यद्यपि विचारण न्यायालय के समक्ष और इस अपील में यह दिखाया गया है कि यद्यपि अर्जी के साथ-साथ यह अपील अप्राप्तवय की माता के द्वारा उसका प्रतिनिधित्व करते हुए फाइल की गई है जिसके अधीन अर्जी-अनुसूचित-संपत्ति का विक्रय करने की ईप्सा की गई

है । इसलिए, जहां भी अर्जीदार/अपीलार्थी शब्द का उपयोग किया गया है, वहां अर्जीदार के अप्राप्तवय संरक्षक को निर्दिष्ट करता है ।

4. अर्जीदार/अपीलार्थी का मामला यह है कि वह अप्राप्तवय मास्टर यशस की नैसर्गिक माता है । अर्जीदार/अपीलार्थी की माता श्रीमती एम. आर. सुनंदा करिबोवनहल्ली, यशवंतपुरा होबली, बेंगलुरु उत्तर तालुका में स्थिति साइट सं. 29, खाता नंबर 682, परिनिर्धारण सं. 52/3क की स्वामी थी । उक्त को उन्होंने तारीख 28 अक्तूबर, 2014 को रजिस्ट्रीकृत दान विलेख के माध्यम से अप्राप्तवय मास्टर यशस को दान में दिया था और इस विलेख में अर्जीदार अपीलार्थी को अप्राप्तवय की वयस्कता तक संरक्षक और अभिरक्षक के रूप में दर्शाया गया है ।

5. इसके अतिरिक्त अर्जीदार/अपीलार्थी का मामला यह है कि जब अर्जी फाइल की गई थी तब अप्राप्तवय मास्टर यशस 12 वर्ष का था और मार्टिन लूथर इंग्लिश स्कूल में पढ़ रहा था । वे एक किराए के गृह में 7,500/- रुपए मासिक किराए पर रह रहे हैं ।

6. इसके अतिरिक्त अर्जीदार/अपीलार्थी का यह भी पक्षकथन है कि वह एक गृहिणी है और उसका पति मासिक वेतन पर चालक के रूप में नियोजित था तथा कोविड-19 महामारी के कारण, उसने अपनी नौकरी खो दी है और उनके पास किराए का संदाय करने, मासिक व्यय का वहन करने तथा अप्राप्तवय मास्टर यशस के शैक्षिक खर्चों को पूरा करने के लिए आय का कोई भी स्रोत नहीं है । गृह के स्वामी ने उन्हें आवास खाली करने का निदेश दिया है क्योंकि उन्होंने किराए का संदाय नहीं किया है । किराए पर एक नया परिसर लेने के लिए और अप्राप्तवय मास्टर यशस की देखभाल करने के लिए, उनके पास आय का कोई भी अन्य स्रोत नहीं है ।

7. अर्जीदार/अपीलार्थी ने आगे दलील दी है कि अर्जी-अनुसूचित-संपत्ति एकमात्र संपत्ति है जिसे अप्राप्तवय के लाभ के लिए व्यनित किया जा सकता है और आगम के भाग का उपयोग अर्जीदार/अपीलार्थी और उसके पति द्वारा वर्तमान वित्तीय संकट से निपटने के लिए किया जाएगा । केवल तभी अप्राप्तवय एक सामान्य बचपन जीने में सक्षम

होगा और उसे इससे अपने भविष्य में सफल होने का अवसर मिलेगा । यदि विक्रय आगम के भाग का उपयोग करने की अनुज्ञा दी जाती है, तो अर्जीदार/अपीलार्थी और उसका पति अपनी वित्तीय जिम्मेदारियों को पूरा कर सकेंगे तथा इससे अप्राप्तवय का कल्याण सुनिश्चित होगा ।

8. अर्जीदार/अपीलार्थी ने इसके अतिरिक्त यह भी दलील दी है कि यदि उसे एक अच्छा क्रेता मिल जाता है, जो पर्याप्त प्रतिफल देकर अर्जी-अनुसूचित-संपत्ति को क्रय करने का आशय रखता हो, तो वह अप्राप्तवय की ओर से संपत्ति का विक्रय करने के लिए और विक्रय आगम को राष्ट्रीयकृत बैंक में जमा करने तथा उसके कल्याण के लिए इसका उपयोग करने के लिए तैयार है । अर्जी-अनुसूचित-संपत्ति का विक्रय एक आशयित विधिक आवश्यकता है ।

9. इस प्रकार, अर्जीदार/अपीलार्थी अर्जी याचिका अनुसूची संपत्ति का विक्रय करने की अनुज्ञा की ईप्सा कर रही है, जो उसके अप्राप्तवय अर्थात् मास्टर यशस से संबंधित है और विक्रय आगम में से 15,00,000/- रुपए का उपयोग अप्राप्तवय के दैनिक व्ययों को पूरा करने, विद्यालय फीस आदि जमा करने हेतु तुरंत उपयोग के लिए तथा शेष राशि को अप्राप्तवय मास्टर यशस के नाम पर राष्ट्रीयकृत बैंक में जमा करने के लिए चाहिए ।

10. निर्विवाद तथ्य यह है कि मूल रूप से अर्जी-अनुसूचित परिसर अप्राप्तवय की नानी का था तथा तारीख 28 अक्तूबर, 2014 के विक्रय विलेख के माध्यम से उन्होंने इसे अपने पौत्र अर्थात् अप्राप्तवय मास्टर यशस को दान के रूप में दिया था । उन्होंने अर्जीदार/अपीलार्थी को अप्राप्तवय का संरक्षक बनाया है ।

11. अब, अधिनियम की धारा 8(2)(क) के अधीन फाइल की गई अर्जी के माध्यम से, अर्जीदार/अपीलार्थी न्यायालय से, अर्जी-अनुसूचित-संपत्ति को विक्रय करने और विक्रय आगमों में से 15,00,000/- रुपए की राशि का उपयोग अपने और अपने पति द्वारा, वित्तीय संकट से निपटने के लिए तथा अप्राप्तवय के कल्याण के लिए और शेष आगमों

को अप्राप्तवय के कल्याण के उपयोग के लिए, जमा कराए जाने की अनुज्ञा के लिए ईप्सा कर रही है ।

12. अर्जीदार/अपीलार्थी ने इस विचारण न्यायालय के समक्ष स्वयं की परीक्षा अभि. सा. 1 के रूप में और एक अन्य साक्षी की परीक्षा अभि. सा. 2 के रूप में कराई है और छह दस्तावेज़ों को प्रदर्श-1 से प्रदर्श-6 के रूप में चिह्नित किया है ।

13. विचारण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा अर्जी को खारिज कर दिया है । इससे व्यथित होकर, अर्जीदार/अपीलार्थी ने इस अधिनियम की धारा 8(2)(क) के अधीन यह अपील फाइल की है ।

14. हमने अर्जीदार/अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री गौतम और श्री लक्ष्मीकांत को सुना और अभिलेख पर मौजूद सामग्री का परिशीलन किया है ।

15. अर्जीदार/अपीलार्थी का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान् काउंसेल ने दलील दी है कि कोविड-19 महामारी के कारण अर्जीदार/अपीलार्थी के पति और अप्राप्तवय के पिता ने अपनी नौकरी खो दी और इस तरह उनके पास स्वयं की या अप्राप्तवय की देखभाल करने के लिए आय का कोई भी अन्य स्रोत नहीं था, जिसमें किराया, विद्यालय की फीस और अप्राप्तवय के अन्य व्ययों का संदाय सम्मिलित हैं ।

16. इसके अतिरिक्त विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि अर्जी-अनुसूचित-संपत्ति के अतिरिक्त अप्राप्तवय के माता-पिता के पास कोई भी अन्य संपत्ति नहीं है इसलिए यदि अर्जीदार को अनुसूचित-संपत्ति को विक्रय करने की अनुज्ञा दी जाती है तो अर्जीदार/अपीलार्थी और उसका पति का आशय विक्रय आगमों में से, 15,00,000/- रुपए का उपयोग अपने वित्तीय संकट से निपटने तथा शेष राशि को अप्राप्तवय के कल्याण और प्रसुविधा हेतु उसी के नाम में जमा करना है ।

17. अधिनियम की धारा 8 नैसर्गिक संरक्षण की शक्तियों के बारे में है । जैसाकि उपधारा (1) से सुव्यक्त है, कि एक हिन्दू अप्राप्तवय का नैसर्गिक संरक्षक केवल उन कार्यों को करने के लिए प्राधिकृत है, जो

अप्राप्तवय की संपत्ति के उपलब्ध कराने, संरक्षण या प्रसुविधा के लिए आवश्यक, युक्तियुक्त और उचित हो, लेकिन संरक्षक किसी भी मामले में अप्राप्तवय को निजी प्रसंविदा से बाध्य नहीं कर सकता है ।

18. तथापि, अधिनियम की धारा 8 की उपधारा (2) के अनुसार, अप्राप्तवय के संरक्षक को न्यायालय की अनुज्ञा के बिना अप्राप्तवय की संपत्ति को हस्तांतरित करने या उसका निपटारा करने का कोई भी प्राधिकार नहीं है । वास्तव में, अधिनियम की धारा 8 की उपधारा (3) के अनुसार, एक नैसर्गिक संरक्षक द्वारा स्थावर संपत्ति को अधिनियम की धारा 8 की उपधारा (1) या उपधारा (2) का उल्लंघन करते हुए किया गया निपटान अप्राप्तवय या उसके अधीन दावा करने वाले किसी भी व्यक्ति के आवेदन पर शून्यकरणीय हो जाएगा ।

19. अधिनियम की धारा 8 की उपधारा (4) केवल आवश्यकता के लिए और अप्राप्तवय के सुव्यक्त लाभ के लिए अधिनियम की धारा 8 की उपधारा (2) में उल्लिखित अप्राप्तवय की संपत्ति को हस्तांतरित करने के लिए नैसर्गिक संरक्षक को अनुज्ञा देने सम्बन्धी न्यायालय की शक्ति को निर्बंधित करती हैं ।

20. दूसरे, शब्दों में अधिनियम की धारा 8 की उपधारा (4) के अधीन न्यायालय अप्राप्तवय की संपत्ति को हस्तांतरित करने की अनुज्ञा केवल उसकी विधिक आवश्यकता या उसकी संपत्ति की प्रसुविधा के लिए दे सकती है ।

21. स्वीकृत रूप से, वर्तमान मामले में अर्जीदार/अपीलार्थी अप्राप्तवय मास्टर यशस से संबंधित अर्जी-अनुसूचित-संपत्ति का विक्रय करने की अनुज्ञा की ईप्सा उसकी विधिक आवश्यकता के लिए या उसकी संपत्ति की प्रसुविधा के लिए नहीं बल्कि अपने और अपने पति के वित्तीय संकट से निपटने के लिए कर रही है ।

22. अप्राप्तवय मास्टर यशस के माता-पिता और नैसर्गिक संरक्षक होने के नाते, यह अर्जीदार/अपीलार्थी और उसके पति का कर्तव्य और उत्तरदायित्व है कि वे उसकी शिक्षा और अन्य व्ययों सहित उसकी

देखभाल करे । अपने वित्तीय संकट को दूर करने के लिए वे अप्राप्तवय की संपत्ति को व्ययनित नहीं कर सकते हैं और विक्रय आगमों के किसी भाग का उपयोग अपने स्वयं के व्ययों और अप्राप्तवय के व्ययों के लिए तथा शेष राशि को भविष्य में अप्राप्तवय के उपयोग के लिए उसके नाम पर जमा नहीं कर सकते हैं । अप्राप्तवय की विधिक आवश्यकता में संरक्षक या किसी अन्य व्यक्ति की आवश्यकता, कोविड-19 जैसी महामारी में भी, सम्मिलित नहीं है । निश्चित रूप से, आशयित अर्जी अनुसूची संपत्ति का हस्तांतरण करना अप्राप्तवय की सम्पदा के फायदे के लिए नहीं है ।

23. अप्राप्तवय की संपदा को लाभ तब होता जब यह असाधारण रूप से अच्छी कीमत प्राप्त कर रहा होता और तब इसे मृत निवेश के रूप में रखने के बजाय इसका विक्रय करना लाभकारी होता । अप्राप्तवय की विधिक आवश्यकता तब होती, जब अप्राप्तवय की शिक्षा या अन्य आसन्न आवश्यकताओं के लिए संपत्ति का निपटान अपेक्षित होता है । अप्राप्तवय के नाम पर चल रही संपत्ति की अनुपस्थिति में भी, अर्जीदार/अपीलार्थी और उसका पति, अप्राप्तवय के माता-पिता और नैसर्गिक संरक्षक होने के नाते उसकी देखभाल करने के लिए बाध्य हैं । इस तरह के मामले में, वे अप्राप्तवय की संपत्ति का उपयोग अपने लाभ के लिए यह दलील देते हुए नहीं कर सकते हैं कि कोविड-19 महामारी की स्थिति के कारण, उनके लिए उक्त का विक्रय करना अपरिहार्य हो गया है ।

24. चूंकि अर्जीदार/अपीलार्थी वित्तीय संकट से निपटने के लिए विक्रय आगमों में से 15,00,000/- रुपए का उपयोग करने के उद्देश्य से तथा शेष राशि को अप्राप्तवय के नाम में जमा करने के लिए अर्जी-अनुसूचित-संपत्ति का विक्रय करने हेतु अनुज्ञा की ईप्सा कर रही है, इसलिए यह स्पष्ट है कि इस संबंध में कोई भी अभिवाक् नहीं किया गया है कि आशयित हस्तांतरण अप्राप्तवय के सुव्यक्त लाभ के लिए आवश्यक है । न तो विचारण न्यायालय और न ही इस न्यायालय के समक्ष यह अभिनिर्धारित करने के लिए कोई भी सामग्री है कि आशयित हस्तांतरण अप्राप्तवय की आवश्यकता या सुव्यक्त लाभ के लिए है ।

25. इन सभी पहलुओं को ध्यान में रखते हुए, हमारे विचार में विचारण न्यायालय ने उचित रूप से अनुज्ञा देने से इनकार किया है और याचिका को खारिज किया है । आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करना न्यायोचित नहीं है ।

26. पूर्वोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हमें इस अपील में कोई भी गुणता दिखाई नहीं देती है । इस कारण से अपील खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

अम./अस.

(2021) 2 सि. नि. प. 625 **कलकत्ता**

सोमेन्द्र क्रिस्तो दत्त

बनाम

कोलकाता नगर निगम और अन्य

(2021 की डब्ल्यू. पी. ओ. सं. 48)

तारीख 24 फरवरी, 2021

न्यायमूर्ति अमृता सिन्हा

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 [सपठित कोलकाता नगर निगम अधिनियम, 1980 की धारा 199] – रिट – सूचीबद्धता प्रमाणपत्र इस आधार पर निरस्त किया जाना कि इसे जारी किए जाने से पूर्व किराएदार ने भू-स्वामी से सहमति नहीं ली थी – निगम द्वारा किराया बिलों के आधार पर सूचीबद्धता प्रमाणपत्र जारी किया जाना – किराएदार, नगर निगम द्वारा जारी किए गए प्रमाणपत्र के आधार पर उक्त परिसर में लम्बे समय से अपना व्यवसाय चला रहा है और अधिनियम के अधीन सहमति पत्र जारी किया जाना आवश्यक नहीं है, इसलिए सूचीबद्धता प्रमाणपत्र निरस्त किए जाने योग्य नहीं है ।

संक्षेप में, तथ्य इस प्रकार हैं कि याची ने निजी प्रत्यर्थी के पक्ष में जारी किए गए सूचीबद्धता प्रमाणपत्र के निरस्तीकरण/रद्दीकरण/वापसी के लिए प्रार्थना की है । याचियों के अनुसार, सूचीबद्धता का उक्त प्रमाणपत्र आरंभ में जारी किया गया था और तत्पश्चात्, कोलकाता नगर निगम अधिनियम, 1980 की धारा 199 में उल्लिखित दिशानिर्देशों के विपरीत नवीनीकृत किया गया था । याची उस परिसर का स्वामी और भू-स्वामी होने का दावा करता है जहां निजी प्रत्यर्थी अपना व्यवसाय चला रहा है । उसने यह दलील दी है कि निजी प्रत्यर्थी के लिए उसके पक्ष में सूचीबद्धता का प्रमाणपत्र जारी करने के पूर्व उसकी सहमति प्राप्त करना बाध्यकारी था । याची के अनुसार, सूचीबद्धता का प्रमाणपत्र भू-स्वामी की सहमति पत्र के बिना निजी प्रत्यर्थी के पक्ष में जारी नहीं किया जा सकता है, जो उक्त परिसर में एक व्यवस्था अतिचारी है । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – धारा 199(2) के अधीन यह उपबंध किया गया है कि सूचीबद्धता का अस्थायी और स्थायी प्रमाणपत्र जारी करने की रीति ऐसी होगी जैसा कि उपधारा में उल्लिखित दिशानिर्देशों में राज्य सरकार द्वारा निर्धारित किया जाए । रिट याचिका की सुनवाई के समय पक्षकारों द्वारा ऐसा कोई दिशानिर्देश प्रस्तुत या निर्दिष्ट नहीं किया गया है । विहित दिशानिर्देश के अभाव में, जो सूचीबद्धता प्रमाणपत्र जारी करने से पहले स्वामी से सहमति पत्र को प्रस्तुत करने को अनिवार्य करता है, कोलकाता नगर निगम सूचीबद्धता प्रमाणपत्र जारी करने के लिए बाध्य होगा और उक्त को प्रस्तुति नहीं करने के आधार पर उसे खारिज नहीं करेगा । निगम ने किराया नियंत्रक के समक्ष निजी प्रत्यर्थी द्वारा किराए की जमा राशि दिखाने वाले चालान का अवलंब लिया और उसके पक्ष में सूचीबद्धता प्रमाणपत्र जारी किया । वस्तुतः, प्रमाणपत्र जारी करने से पूर्व निगम की ओर से इसकी जांच करने की गुंजाइश नहीं थी क्योंकि अधिनियम इसकी मंजूरी नहीं देता है । निगम की कार्रवाई को गलत नहीं ठहराया जा सकता । (पैरा 25)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2017] (2017) 4 सी. एच. एन. 504 = ए. आई. आर. 2017 एन. ओ. सी. 786 (कलकत्ता) : **हरविंदर सिंह** बनाम **कोलकाता नगर निगम और अन्य** ; 7, 21

[2008] (2008) 1 सी. एच. एन. 44 : **अखिल बंगाल रिक्शा संघ और अन्य** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य** ; 6, 22

[1995] (1995) (सप्ली.) 2 एस. सी. सी. 348 = ए. आई. आर. 1995 एस. सी. 1395 : **पी. कासिलिंगम और अन्य** बनाम **पी. एस. जी. प्रौद्योगिकी कॉलेज और अन्य** । 8, 16

[1987] 1987 (2) सी. एच. एन. 219 : **वेनोद कुमार जालान** बनाम **कलकत्ता नगर निगम और अन्य** । 11, 20

सिविल रिट अधिकारिता : 2021 की डब्ल्यू. पी. ओ. सं. 48.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से सर्वश्री अभ्राजित मित्रा, दिपेन्द्र नाथ चुन्देर और एस. मित्रा

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री बरिन बनर्जी, सुश्री सीमा चक्रवर्ती, श्री जगबंधु राय, सुश्री मानसी राय, मधुरिमा सरकार, सिप्रा मजूमदार और सोगाता मित्रा

आदेश

पक्षकारों की सहमति से मामला "न्यायालय आवेदन" प्रक्रम पर विचार किए जाने हेतु लिया जाता है और इसे नीचे प्रकट रीति से निपटाया जा रहा है ।

2. आवेदक ने निजी प्रत्यर्थी के पक्ष में जारी किए गए सूचीबद्धता प्रमाणपत्र के निरस्तीकरण/रद्दीकरण/वापसी के लिए प्रार्थना की है । याचियों के अनुसार, सूचीबद्धता का उक्त प्रमाणपत्र आरंभ में जारी किया गया था और तत्पश्चात्, कोलकाता नगर निगम अधिनियम, 1980 की धारा 199 में उल्लिखित दिशानिर्देशों के विपरीत नवीनीकृत किया गया था ।

3. याची उस परिसर का स्वामी और भू-स्वामी होने का दावा करता है जहां निजी प्रत्यर्थी अपना व्यवसाय चला रहा है । उसने यह दलील दी कि निजी प्रत्यर्थी के लिए उसके पक्ष में सूचीबद्धता का प्रमाणपत्र जारी करने के लिए आवेदन करने से पूर्व उसकी सहमति प्राप्त करना बाध्यकारी था । याची के अनुसार, सूचीबद्धता का प्रमाणपत्र भू-स्वामी के सहमति पत्र के बिना निजी प्रत्यर्थी के पक्ष में जारी नहीं किया जा सकता था, जो उक्त परिसर में एक व्यवस्था अतिचारी है ।

4. याची की दलील यह है कि सूचीबद्धता प्रमाणपत्र जारी करने के लिए आवेदन पर तभी विचार किया जा सकता है, यदि उसे दिशानिर्देशों में यथाउपदर्शित विहित प्रारूप के अनुसार बनाया गया हो ।

5. याची ने 2012 के एम. ए. टी. 1238 के साथ 2012 के सी. पी. ए. एन. 1099 के साथ 2010 की रिट याचिका 20159 (रिट) के साथ 2012 के सी. ए. एन. 7441 के साथ 2012 के एम. ए. टी. 1238 के साथ 2012 के ए. एस. टी. ए. 131 के साथ 2020 के ए. एस. टी. 216 में इस न्यायालय की माननीय खंडपीठ द्वारा तारीख 4 अक्तूबर, 2012 को पारित अप्रकाशित आदेश का अवलंब लिया जिसमें न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि सूचीबद्धता का प्रमाणपत्र होने के प्रयोजन के लिए यह प्ररूप में यथाउल्लिखित विभिन्न विवरणों के प्रकटीकरण की अपेक्षा की जाती है । ऐसे आवेदन के अभाव में, निम्नलिखित नियम, नगरपालिका के पास उस पर विचार करने की कोई गुंजाइश नहीं थी ।

6. याची ने **अखिल बंगाल रिक्शा संघ और अन्य** बनाम **पश्चिमी**

बंगाल राज्य और अन्य[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लिया है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया है कि नगर आयुक्त सूचीबद्धता प्रमाणपत्र को जारी करने से इंकार कर सकता है यदि उसके लिए किया गया आवेदन क्रम में नहीं है । नवीनीकरण के आवेदन को कोलकाता नगर निगम अधिनियम, 1980 की धारा 199 के निबंधनों के अधीन विचार किया जाना है और कानून की शर्तों के अनुसार तथा इससे संबंधित किसी भी बाह्य आधार पर विचार नहीं किया जा सकता है ।

7. याची ने **हरविंदर सिंह** बनाम **कोलकाता नगर निगम और अन्य**[2] वाले मामले में अपने पूर्वोक्त आधार के समर्थन में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का भी अवलंब लिया है ।

8. माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **पी. कासिलिंगम और अन्य** बनाम **पी. एस. जी. प्रौद्योगिकी कॉलेज और अन्य**[3] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया गया है जिसमें न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अधिनियम और नियम एक संयुक्त योजना का भाग है । अधिनियम के बहुत से उपबंधों को नियमों में विहित सुसंगत उपबंध या प्ररूप के पश्चात् ही संचालन में लाया जा सकता है । अधिनियम को नियमों के अभाव में लागू नहीं किया जा सकता है ।

9. निजी प्रत्यर्थी का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान् अधिवक्ता ने निर्देशों पर यह दलील दी है कि वह कोलकाता नगर निगम द्वारा जारी किए गए सूचीबद्धता प्रमाणपत्र के आधार पर तीस वर्षों से अधिक की अवधि से उक्त परिसर में व्यवसाय कर रहे हैं । यह दलील दी गई है कि वह उक्त परिसर में एक सद्भाविक किराएदार है और वह किराया नियंत्रक के समक्ष नियमित रूप से, मास-प्रति-मास किराया जमा कर रहा है ।

---

[1] (2008) 1 सी. एच. एन. 44.

[2] (2017) 4 सी. एच. एन. 504 = ए. आई. आर. 2017 एन. ओ. सी. 786 (कलकत्ता).

[3] (1995) (सप्ली.) 2 एस. सी. सी. 348 = ए. आई. आर. 1995 एस. सी. 1395.

10. कोलकाता नगर निगम की ओर से उपस्थित हुए विद्वान् अधिवक्ता ने ये दलीलें दी हैं कि सूचीबद्धता प्रमाणपत्र विधि के उपबंधों का सख्ती से पालन करते हुए निजी प्रत्यर्थी के पक्ष में जारी किया गया है । पक्षकारों के बीच यदि कोई विवाद होता है, तो पूर्ण रूप से निजी और सिविल प्रकृति का होता है । पक्षकारों के बीच अधिकथित विवाद को निगम के द्वारा सूचीबद्धता प्रमाणपत्र को जारी करने में या उसके नवीनीकरण करने के मार्ग में नहीं आना चाहिए ।

11. निगम के विद्वान् अधिवक्ता ने **वेनोद कुमार जालान** बनाम **कलकत्ता नगर निगम और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लिया जिसमें न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि किसी संपत्ति का कोई भी कब्जा करने वाला, जब तक वह विधि के अनुसार बेदखल न हो जाए वह आवश्यक अधिकार या सुखाचार प्राप्त करके संपत्ति में बने रहने का हकदार है और यदि वह व्यापार अनुज्ञप्ति प्राप्त करके व्यवसाय चलाना चाहता है, परन्तु वह उपबंधित विधि के अधीन यथाविहित अन्य औपचारिकताओं का अनुपालन करता हो । जब तक संपत्ति व्यक्ति के कब्जे में है तब तक कोई भी उसकी अनुज्ञप्ति के नवीनीकरण के संबंध में कोई आपत्ति नहीं कर सकता है । क्योंकि अनुज्ञप्ति संपत्ति का कोई हक प्रदान नहीं करता है ।

12. मैंने दोनों पक्षकारों की ओर से दी गई दलीलों को सुना है ।

13. याची का प्राथमिक तर्क यह है कि कोलकाता नगर निगम को सूचीबद्धता प्रमाणपत्र जारी और तत्पश्चात् उसका नवीनीकरण निजी प्रत्यर्थी के पक्ष में नहीं करना चाहिए था, क्योंकि निजी प्रत्यर्थी एक प्रकार का अतिचारी है और याची ने उक्त परिसर का स्वामी होने के नाते उक्त परिसर से व्यवसाय चलाने की उसे अनुमति देने वाला कोई भी सहमति पत्र जारी नहीं किया था ।

14. याची ने कोलकाता नगर निगम अधिनियम, 1980 की धारा 1999(1) का अवलंब लिया है, जिसमें यह उल्लेख किया गया है कि

---

[1] 1987 (2) सी. एच. एन. 219.

अनुसूची-iv में यथाउल्लिखित किसी भी पेशे, व्यापार या व्यवसाय में लगे हुए या लगे रहने का इरादा रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को आवेदन शुल्क के साथ आवेदन प्रस्तुत करके सूचीबद्धता के प्रमाणपत्र को प्राप्त करना होगा । जैसाकि दिशानिर्देशों में विनिर्दिष्ट है । याची के अनुसार, दिशानिर्देश कोलकाता नगर निगम की शासकीय वेबसाइट पर उपलब्ध हैं जिसमें व्यापार अनुज्ञप्ति प्राप्त करने की प्रक्रिया को सरल रीति में उल्लेखित किया गया है ।

15. कोलकाता नगर निगम की शासकीय वेबसाइट में उपलब्ध प्रक्रिया में व्यापार अनुज्ञप्ति प्राप्त करने हेतु यह उल्लेख है कि व्यवसाय के स्थान के सबूत के लिए आवेदक, यदि एक किराएदार है, तो उसे किराए का बिल प्रस्तुत करना आवश्यक है । शासकीय वेबसाइट में यह भी उल्लेख किया गया है कि यदि किसी नातेदार/व्यक्ति को परिसर के स्वामी द्वारा किराया मुक्त परिसर प्रदान किया जाता है, तो स्वामी द्वारा सहमति पत्र प्रस्तुत करना होता है । यदि किसी व्यक्ति को किसी उप-किराएदार द्वारा किराया मुक्त परिसर दिया जाता है, तो किराएदार के वर्तमान सूचीबद्धता प्रमाणपत्र के साथ सहमति पत्र प्रस्तुत किया जाना चाहिए। यदि एक उप-किराएदार है, तो परिसर के स्वामी की सहमति के साथ दस्तावेजों अर्थात् किराया बिल, मूल किराएदार के वर्तमान सूचीबद्धता प्रमाणपत्र को भी प्रस्तुत करना होगा ।

16. याची ने अपने इस निवेदन के समर्थन में इस न्यायालय के कतिपय निर्णयों का अवलंब लिया है कि निगम उक्त अधिनियम की धारा 1999(1) में यथाउल्लिखित दिशानिर्देशों को स्वीकार करने के लिए बाध्य है । याची ने अपने इस निवेदन के समर्थन में, कि अधिनियम और नियम एक संयुक्त योजना का भाग है, **पी. कासिलिंगम** (उपरोक्त) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय का भी अवलंब लिया है जिसमें कहा गया है ।

17. याची के अनुसार, अधिनियम में, यथाउल्लिखित दिशानिर्देशों के अनुसार, सूचीबद्धता प्रमाणपत्र प्राप्त करने और उसके नवीनीकरण के लिए आवेदन करना अत्यंत अनिवार्य हैं । तथापि, याची पूर्वोक्त खण्ड के

निबंधनों में, कोलकाता नगर निगम द्वारा विरचित किए गए कोई भी दिशानिर्देश प्रस्तुत करने में सक्षम नहीं हुआ है । अवलंब, मात्र उस जानकारी पर लिया गया है जो कि कोलकाता नगर निगम के पोर्टल में उपलब्ध है जो केवल कतिपय मामलों में आवेदन करते समय स्वामी से सहमति पत्र प्रस्तुत करने के बारे में उल्लेख करता है ।

18. निजी प्रत्यर्थी ने उक्त परिसर के सद्भाविक किराएदार होने का और किराया नियंत्रक के समक्ष किराया जमा करने का दावा किया है । निगम की वेबसाइट में विहित प्रक्रिया के अनुसार, एक किराएदार से सूचीबद्धता प्रमाणपत्र प्राप्त करने के लिए आवेदन करते समय केवल किराया बिल प्रस्तुत करना अपेक्षित है । इसमें भू-स्वामी का सहमति पत्र प्रस्तुत करने की कोई आवश्यकता नहीं है । किराया नियंत्रक के समक्ष भू-स्वामी के पक्ष में किराया जमा को दर्शाने वाला चालान इस प्रयोजन के लिए किराया बिल के रूप में समझा जा सकता है ।

19. निजी प्रत्यर्थी के विद्वान् अधिवक्ता ने यह दलील दी है कि वह तीन दशकों से अधिक की अवधि से उक्त परिसर में व्यवसाय कर रहा है । निजी प्रत्यर्थी के पास कोलकाता नगर निगम द्वारा उसके पक्ष में जारी किया गया विधिमान्य सूचीबद्धता प्रमाणपत्र है ।

20. **वेनोद कुमार जालान** (उपरोक्त) वाले मामले में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि संपत्ति का कोई भी कब्जाधारी, जब तक कि विधि के क्रम में उसे बेदखल न किया गया हो, तब तक वह पानी और प्रकाश के रूप में सुखाचार के आवश्यक अधिकारों को प्राप्त करते हुए संपत्ति में बने रहने का हकदार है, और यदि वह व्यापार अनुज्ञप्ति प्राप्त करके व्यवसाय चलाने का इरादा रखता है, परन्तु कानून के अधीन वह विहित अन्य औपचारिकताओं का अनुपालन करता हो । असली स्वामी की अपेक्षा कोई भी अनुज्ञप्ति संपत्ति में उत्तम अधिकार प्रदान नहीं कर सकता है, और संपत्ति पर हक के प्रश्न का अन्वेषण निगम द्वारा नहीं किया जा सकता है तथा उक्त जांच का विषय नहीं हो सकता है ।

21. **हरविंदर सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यदि कोई व्यक्ति अधिनियम में यथाउल्लिखित किसी भी व्यापार में शामिल होना चाहता है तो उसे सूचीबद्धता का प्रमाणपत्र प्राप्त करना होगा और समय-समय पर उसे नवीनीकृत करना होगा । प्रमाणपत्र उचित प्ररूप में आवेदन प्रस्तुत करने पर प्राप्ति योग्य होता है । यह धारा एक व्यापारी की सूचीबद्धता की वैचारिक संकल्पना करता है और न कि उस विशिष्ट स्थान की जहां से ऐसा व्यापार किया जा सकता है ।

22. **अखिल बंगाल रिक्शा संघ और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले में न्यायालय का मत यह है कि सूचीबद्धता प्रमाणपत्र जारी करने या उसके नवीनीकरण के लिए किए गए आवेदन की जांच की परिधि बहुत सीमित है । इसे अस्वीकार किया जा सकता है यदि आवेदन क्रम में नहीं है । यदि यह क्रम में है तो नियम मंजूर किया जा सकता है । यह भी अभिनर्धारित किया है कि संबंधित विचार किसी बाहरी आधारों पर नहीं किया जा सकता है ।

23. तत्काल मामले में, निजी प्रत्यर्थी कोलकाता नगर निगम द्वारा जारी किए गए प्रमाणपत्र के आधार पर उक्त परिसर से लंबे समय से अपना व्यवसाय चलाने का दावा कर रहा है । याची विधि के किसी भी उपबंध को दर्शाने में विफल रहा है जो कोलकाता नगर निगम को सूचीबद्धता प्रमाणपत्र को रद्द/निरस्त करने की अनुमति देता है । याची द्वारा अवलंब ली गई धारा 199 में निर्दिष्ट दिशानिर्देशों को भी न्यायालय में नहीं प्रस्तुत किया गया है ।

24. ऐसा प्रतीत होता है कि कोलकाता नगर निगम अधिनियम, 1980 की धारा 199 को 17 अगस्त, 2017 के प्रभाव से संशोधित किया गया था और उक्त संशोधन के आधार पर उपबंध जो नगर आयुक्त से आवेदन प्राप्त होने के 30 दिनों के भीतर जांच करने की अपेक्षा करता था उसे समाप्त कर दिया गया । उक्त संशोधन यह विवक्षित करता है कि आवेदन शुल्क के साथ आवेदन प्रस्तुत करने पर कोलकाता नगर निगम से सूचीबद्धता प्रमाणपत्र प्राप्त किया जा सकता है ।

25. धारा 199(2) के अधीन यह उपबंध किया गया है कि सूचीबद्धता का अस्थायी और स्थायी प्रमाणपत्र जारी करने की रीति ऐसी होगी जैसाकि उपधारा में उल्लिखित दिशानिर्देशों में राज्य सरकार द्वारा निर्धारित किया जाए । रिट याचिका की सुनवाई के समय पक्षकारों द्वारा ऐसा कोई दिशानिर्देश प्रस्तुत या निर्दिष्ट नहीं किया गया है । विहित दिशानिर्देश के अभाव में, जो सूचीबद्धता प्रमाणपत्र जारी करने से पहले स्वामी से सहमति पत्र को प्रस्तुत करने को अनिवार्य करता है, कोलकाता नगर निगम सूचीबद्धता प्रमाणपत्र जारी करने के लिए बाध्य होगा और उक्त को प्रस्तुति नहीं करने के आधार पर उसे खारिज नहीं करेगा । निगम ने किराया नियंत्रक के समक्ष निजी प्रत्यर्थी द्वारा किराए की जमा राशि दिखाने वाले चालान का अवलंब लिया और उसके पक्ष में सूचीबद्धता प्रमाणपत्र जारी किया । वस्तुतः, प्रमाणपत्र जारी करने से पूर्व निगम की ओर से इसकी जांच करने की गुंजाइश नहीं थी क्योंकि अधिनियम इसकी मंजूरी नहीं देता है । निगम की कार्रवाई को गलत नहीं ठहराया जा सकता । तद्नुसार, निजी प्रत्यर्थी के पक्ष में जारी किए गए सूचीबद्धता प्रमाणपत्र को रद्द/निरस्त करने के लिए याची की प्रार्थना में कोई बल नहीं है । वर्तमान मामले में याची के पक्ष में कोई अनुतोष मंजूर नहीं किया जा सकता है ।

26. 2021 के रिट याचिका आदेश 48 को खारिज किया जाता है ।

27. लागत के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

28. इस निर्णय की प्रमाणित प्रतिलिपि तुरंत, यदि आवेदन किया गया है, तो सामान्य विधिक औपचारिकताओं के अनुपालन पर पक्षकारों या उनके अधिवक्ताओं को शीघ्र अतिशीघ्र अभिलेख पर रखने के लिए भेजी जाए ।

याचिका खारिज की गई ।

अम./क.

सेठी पी. वी.

बनाम

कोई नहीं

(2021 की मूल याचिका सं. 146)

तारीख 26 फरवरी, 2021

न्यायमूर्ति ए. मुहम्मद मुश्ताक और न्यायमूर्ति (डा.) कौसर एडप्पागत

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 13ख और धारा 20(2) [सपठित केरल विधि व्यवसाय नियम, 1971 का नियम 23 और कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 23] – पारस्परिक सम्मति से विवाह-विच्छेद की अर्जी मुख़्तार के माध्यम से फाइल किया जाना – निचले न्यायालय द्वारा मुख़्तार को माध्यम बनाना स्वीकार न किया जाना – अर्जी वापस किया जाना – केरल उच्च न्यायालय द्वारा विरचित किए गए नियम और कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 23 के अधीन केरल सरकार द्वारा विरचित नियम मुख़्तारनामा धारक के माध्यम से कुटुंब न्यायालय के समक्ष अर्जी प्रस्तुत किए जाने को प्रतिषिद्ध नहीं करते हैं और मुख्तारनामा धारक कुटुंब न्यायालय के समक्ष पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद की अर्जी पर हस्ताक्षर कर सकता है, उसे फाइल कर सकता है और अभियोजन चला सकता है, अतः अर्जी वापस करने का निचले न्यायालय का आदेश न्यायोचित नहीं है ।

इस मामले में याचियों का विवाह तारीख 8 मई, 2011 को हुआ था । वर्ष 2013 में उनके यहां लड़के का जन्म हुआ, लेकिन उनका वैवाहिक सुख लंबे समय तक नहीं रह सका । वैवाहिक विवाद उद्भूत हुआ और संबंध तनावपूर्ण हो गए जिसके परिणामस्वरूप वर्ष 2014 के बाद से कुटुंब न्यायालय और मजिस्ट्रेट न्यायालय के समक्ष विभिन्न विधिक कार्यवाहियां संस्थित की गईं । बाद में वर्ष 2020 में शुभचिंतकों के सहयोग से मध्यकता हुई और पूरा विवाद विनिर्धारित हो गया तथा तारीख 11 जनवरी, 2020 को याचियों द्वारा एक करार निष्पादित किया

गया था । यह महसूस होने पर कि वे अब और साथ नहीं रह सकते हैं, याचियों ने अलग होने का विनिश्चय किया । उक्त करार की शर्तों के अनुसार, याचियों ने अन्य बातों के साथ कुटुंब न्यायालय के समक्ष विवाह-विच्छेद के लिए एक संयुक्त अर्जी फाइल करने का विनिश्चय किया । तद्नुसार याचियों ने संयुक्त रूप से निचले न्यायालय के समक्ष अधिनियम, 1955 की धारा 135ख के अधीन पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी फाइल की । ऐसी मूल अर्जी के संस्थित होने के समय, पहला याचियों/पति विदेश में था और कोविड-19 महामारी के प्रतिबंधों के कारण से वह अर्जी प्रस्तुत करने के लिए भारत वापस आने की स्थिति में नहीं था । इसलिए, प्रथम याची का प्रतिनिधित्व सम्यक् रूप से निष्पादित किए गए मुख्तारनामा धारक द्वारा किया गया था, जो कोई और नहीं बल्कि उसका अपना भाई है । निचले न्यायालय ने तारीख 7 दिसंबर, 2020 के आदेश के अनुसार मूल अर्जी वापस कर दी । इस आदेश से व्यथित होकर अर्जीदारों (जो इस मामले में याची हैं) की ओर से संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन याचिका फाइल की गई । याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – आक्षेपित आदेश के परिशीलन से यह पता चलता है कि मूल अर्जी को वापस करने का निचले न्यायालय द्वारा कोई भी कारण नहीं बताया गया है । जो कहा गया है कि वह यह है कि अधिनियम की धारा 13ख के अधीन विवाह-विच्छेद के लिए संयुक्त अर्जी मुख्तारनामा धारक के माध्यम से फाइल नहीं की जा सकती । जब विवाह के दो पक्षकार कुटुंब न्यायालय के समक्ष आते हैं और अधिनियम, 1955 की धारा 13ख के अधीन पारस्परिक सहमति से अपने विवाह को समाप्त करने के लिए कहते हैं, तो धारा 13ख की उपधारा (2) के पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत किए गए समावेदन को उस समय तक स्थगित करना होगा जिसकी अवधि 6 माह से कम न हो । इसके अतिरिक्त उपधारा (2) में यह अपेक्षित है कि पक्षकारों को सुनने के पश्चात् न्यायालय का समाधान हो जाने पर और शुद्धता के संबंध में ऐसी जांच के पश्चात् जिसे वह अर्जी में किए गए प्रकथनों के लिए ठीक समझे, विवाह-विच्छेद की डिक्री यह घोषित करते हुए पारित करेगा कि डिक्री की तारीख से

विवाह का विघटन कर दिया गया है । साधारणतया, उस समय दोनों पक्षकारों की भौतिक उपस्थिति पर बल दिया जाता है और पक्षकारों की सहमति की पुष्टि के लिए उनकी पहचान को सत्यापित करना आवश्यक है । इससे स्पष्ट रूप से मूल अर्जी को वापस करते समय न्यायालय को बल मिलेगा । ऐसी जांच के समय यदि न्यायालय आवश्यक समझे, तो पक्षकारों को भौतिक रूप से उपस्थिति कराया जा सकता है । केवल इसलिए कि अर्जी अधिनियम, 1955 की धारा 13ख के अधीन पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद के लिए फाइल की गई है, कि कोई पक्षकार सम्यक् रूप से गठित मुख्तारनामा धारक के माध्यम से कार्यवाही प्रारंभ नहीं कर सकता, क्योंकि अधिनियम, 1955 की धारा 13ख में ऐसा कोई भी उपबंध अंतर्विष्ट नहीं है, जो आदेश 3 के नियम 1 और 2 के अधीन मुख्तारनामा धारक की शक्ति को निराकृत करता हो और संहिता का आदेश 6, नियम 14 और अधिनियम, 1955 की धारा 20(2) पक्षकार की ओर से स्वयं अर्जीदार द्वारा या कुछ सक्षम व्यक्तियों द्वारा वादपत्र या अर्जी के सत्यापन के लिए विधि द्वारा अपेक्षित रीति में फाइल अर्जी को, प्राप्त करने में न्यायालय को समर्थ बनाता है । इसके अतिरिक्त, केरल उच्च न्यायालय द्वारा विरचित किए गए नियम या कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 23 के अधीन केरल सरकार द्वारा विरचित किए गए नियम मुख्तारनामा धारक के माध्यम से कुटुंब न्यायालय के समक्ष अर्जी प्रस्तुत करने को प्रतिषिद्ध नहीं करते हैं । इसलिए, अधिनियम, 1955 की धारा 13ख के अधीन अर्जी के संबंध में कोई भी अंतर नहीं किया जा सकता है । इन सभी कारणों से हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि मुख्तारनामा धारक कुटुंब न्यायालय के समक्ष अधिनियम, 1955 की धारा 13ख के अधीन पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद की अर्जी पर हस्ताक्षर कर सकता है, फाइल कर सकता है, अभियोजन चला सकता है । (पैरा 15)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2019]	ए. आई. आर. 2019 दिल्ली 1 :	
	राजा बनर्जी बनाम **अल्का बनर्जी** ;	13

[2018] ए. आई. आर. 2018 बम्बई 148 :
हर्षदा भरत देशमुख बनाम **भरत अप्पासाहेब देशमुख** ; 13

[2017] ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 5745 :
सैंथिनी बनाम **विजया वेंकटेश** ; 16

[2017] 2017 (1) के. एच. सी. 796 :
जेन चाकुप्राकल और अन्य बनाम **मैक्स जार्ज** ; 13

[2016] 2016 (6) ए. एल. जे. 589 :
कंवलीजीत सचदेव बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** ; 13

[2015] ए. आई. आर. 2015 हैदराबाद 191 :
दसम विजय रामाराव बनाम **एम. साई श्री** ; 13

[2015] 2015 के. एच. सी. 1680 :
सुधा रामलिंगम बनाम **रजिस्ट्रार जनरल, मद्रास और एक अन्य** ; 13

[2011] 2011 (3) के. एच. सी. 80 :
कुन्ही पुरयिल मुकुंदन नवीन बनाम **अंजलिका दिनेश** ; 6, 13

[2010] ए. आई. आर. 2010 पी. और एच. 90 :
नवदीप कौर बनाम **मनिंदर सिंह अहलूवालिया** ; 13

[2007] 2007 (4) के. एल. टी. 379 :
सुमा आर. बनाम **राजन पिल्लई** ; 13

[2007] 2007 (1) के. एच. सी. 156 :
पुथियापुरयिल अब्दुल सलाम बनाम **पी. पी. मरियुम्मा और अन्य** ; 13

[2005] ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 439 :
जानकी वाशदेव भोजवानी बनाम **इंडसइंड बैंक लिमिटेड** ; 14

[2003] (2003) 4 एस. सी. सी. 601 :
महाराष्ट्र राज्य बनाम **डा. प्रफुल्ल बी. देसाई** ; 16

[1988] 1988 (1) के. एल. टी. 673 :
नारायणन नायर बनाम **जॉन कुरियन** । 11

सिविल रिट अधिकारिता : 2021 की मूल याचिका सं. 146.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन रिट याचिका ।

याचियों की ओर से श्री सतीशन अलक्काडन

प्रत्यर्थियों की ओर से –

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति (डा.) कौसर एडप्पागत ने दिया ।

न्या. (डा.) एडप्पागत – हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (जिसे संक्षेप में "अधिनियम, 1955" कहा गया है) की धारा 13ख के अधीन पारस्परिक सहमति से विरक्त दंपत्ति द्वारा विवाह-विच्छेद के लिए कुटुंब न्यायालय, तलशशेरी के समक्ष फाइल की गई एक संयुक्त अर्जी पर इस कारण को निर्दिष्ट करते हुए विचार नहीं किया गया कि पति का प्रतिनिधित्व उसके मुख्तारनामा धारक के माध्यम से किया गया था ।

2. याचियों का विवाह तारीख 8 मई, 2011 को हुआ था । वर्ष 2013 में उनके यहां लड़के का जन्म हुआ, लेकिन उनका वैवाहिक सुख लंबे समय तक नहीं रह सका । वैवाहिक विवाद उद्भूत हुआ और संबंध तनावपूर्ण हो गए जिसके परिणामस्वरूप वर्ष 2014 के बाद से कुटुंब न्यायालय और मजिस्ट्रेट न्यायालय के समक्ष विभिन्न विधिक कार्यवाहियां संस्थित की गईं । बाद में वर्ष 2020 में शुभचिंतकों के सहयोग से मध्यकता हुई और पूरा विवाद विनिर्धारित हो गया तथा तारीख 11 जनवरी, 2020 को याचियों द्वारा एक करार निष्पादित किया गया था । यह महसूस होने पर कि वे अब और साथ नहीं रह सकते हैं, याचियों ने अलग होने का विनिश्चय किया । उक्त करार की शर्तों के अनुसार, याचियों ने अन्य बातों के साथ कुटुंब न्यायालय के समक्ष विवाह-विच्छेद के लिए एक संयुक्त अर्जी फाइल करने का विनिश्चय किया । तद्नुसार याचियों ने संयुक्त रूप से निचले न्यायालय के समक्ष अधिनियम, 1955 की धारा 135ख के अधीन पारस्परिक सहमति से

विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी फाइल की । ऐसी मूल अर्जी के संस्थित होने के समय, पहला याचियों/पति विदेश में था और कोविड-19 महामारी के प्रतिबंधों के कारण से वह अर्जी प्रस्तुत करने के लिए भारत वापस आने की स्थिति में नहीं था । इसलिए, प्रथम याची का प्रतिनिधित्व सम्यक् रूप से निष्पादित किए गए मुख्तारनामा धारक द्वारा किया गया था, जो कोई और नहीं बल्कि उसका अपना भाई है । निचले न्यायालय ने तारीख 7 दिसंबर, 2020 के आदेश के अनुसार मूल अर्जी वापस कर दी, जिसे प्रदर्श पी-1 के रूप में चिह्नित किया गया है जो निम्न प्रकार है :–

> "याचिका, मुख्तारनामा धारक के माध्यम से एच. एम. के माध्यम से अधिनियम की धारा 13ख के अधीन फाइल नहीं की जा सकती है । इसलिए, वापस की जाती है ।"

3. उक्त आदेश भारत के संविधान की धारा 227 के अधीन फाइल इस मूल याचिका में चुनौती के अधीन हैं ।

4. याचियों के काउंसेल को सुना ।

5. विनिश्चय के लिए जो संक्षिप्त प्रश्न उठता है वह यह है कि क्या मुख्तारनामा धारक अधिनियम, 1955 की धारा 13ख के अधीन विवाह-विच्छेद के लिए संयुक्त याचिका पर हस्ताक्षर और इसे फाइल कर सकता है ।

6. याचियों के विद्वान् काउंसेल ने अधिनियम, 1955 की धारा 20 और कुटुंब न्यायालय (प्रक्रिया) नियम, 1989 के नियम 5 का अवलंब लेते हुए तर्क दिया है कि प्रत्येक अर्जी कुटुंब न्यायालय के समक्ष अर्जीदारों या किसी अन्य सक्षम व्यक्ति द्वारा विधि द्वारा अपेक्षित रीति से वादपत्र के सत्यापन के लिए फाइल की जा सकती है और यह अधिनियम मुख्तारनामा धारक के माध्यम से अर्जी पर विचार किए जाने को प्रतिषिद्ध नहीं करता है । इसके अतिरिक्त काउंसेल ने दलील दी है कि पहले याची का प्रतिनिधित्व उसके अपने भाई/मुख्तारनामा धारक ने किया है और इस तरह, वह एक सक्षम व्यक्ति है । विद्वान् काउंसेल ने अपनी दलील के समर्थन में **कुन्ही पुरयिल मुकुंदन नवीन** बनाम

अंजलिका दिनेश[1] वाले मामले में इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ के विनिश्चय का अवलंब लिया है, जिसमें विवाह-विच्छेद के लिए याचिका कुटुंब न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से या मुख्तारनामा धारक के माध्यम से भी की जा सकती हैं ।

7. मुख्तारनामा एक प्राधिकार है, जिसके आधार पर "किसी व्यक्ति को दूसरे के स्थान पर उसके लिए कार्य करने हेतु स्थापित किया जाता है । ब्लैक ला डिक्शनरी में, "मुख्तारनामा" को ऐसी लिखत माना गया है जिसके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के अभिकर्ता के रूप में कार्य करने के लिए प्राधिकृत होता है । जैसा कि भारतीय संविदा अधिनियम 1872 की धारा 182 में यह उपबंध किया गया है कि शक्ति दाता और शक्ति आदाता के बीच संबंध मालिक और अभिकर्ता जैसा होता है । यह अभिक्रम तब उद्भूत होता है जब अभिकर्ता मालिक की ओर से कार्य करता है या कार्य करने की सहमती रखता है । इस संबंध की सृष्टि संविदा से होती है । मुख्तारनामा अधिनियम, 1882 की धारा 2, मुख्तारनामा आदाता को "अपने नाम और हस्ताक्षर के साथ कुछ भी करने के लिए मुख्तारनामा दाता की शक्ति का प्राधिकार देती है ।" एक बार जब ऐसा प्राधिकार प्रदान कर दिया जाता है, तब उक्त अधिनियम यह अनुमोदित करता है कि आदाता द्वारा किया गया समस्त कार्य, "विधि में उतना ही प्रभावी होगा जैसे कि यह दाता के नाम में और उसके हस्ताक्षर के साथ दाता द्वारा ही किया गया हो, ।" उपरोक्त उपबंध "वह जो किसी दूसरे के माध्यम से कार्य करता है, वह स्वयं कार्य करता है" के सूत्र की वैधानिक मान्यता है, जिसका अर्थ यह है कि जो कोई दूसरे के माध्यम से कार्य करता है तब यह माना जाएगा कि स्वयं उसने ही कार्य किया है । दूसरे शब्दों में, सामान्य नियम यह है कि कोई भी व्यक्ति जो स्वयं कोई कार्य कर सकता है, वह दूसरे को अपने लिए वह कार्य करने के लिए प्राधिकृत कर सकता है ।

8. विधि इस संबंध में सुस्थिर है कि मुख्तारनामा धारक किसी सिविल न्यायालय में सभी कार्यवाहियों में पक्षकार की ओर से हाजिर हो सकता है, अभिवाक् कर सकता है और कार्य भी कर सकता है । सुसंगत

---

[1] 2011 (3) के. एच. सी. 80.

कानूनी उपबंध सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (जिसे संक्षिप्त में "संहिता" कहा गया है) का आदेश 6, नियम 14 इस प्रकार है :-

"**14. अभिवचन का हस्ताक्षरित किया जाना** - हर अभिवचन पक्षकार द्वारा और यदि उसका कोई प्लीडर हो तो उसके द्वारा हस्ताक्षरित किया जाएगा । परंतु जहां अभिवचन करने वाला पक्षकार अनुपस्थिति के कारण या किसी अच्छे हेतुक से अभिवचन पर हस्ताक्षर करने में असमर्थ है वहां वह ऐसे व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित किया जा सकेगा जो उसकी ओर से हस्ताक्षरित करने के लिए वाद लाने या प्रतिरक्षा करने के लिए उसके द्वारा समरूप से प्राधिकृत है ।"

संहिता के आदेश 3, नियम 1 और 2 इस प्रकार से है -

"1. **उपसंजातियां, आदि स्वयं या मान्यताप्राप्त अभिकर्ता द्वारा या प्लीडर द्वारा की जा सकेंगी** - किसी भी न्यायालय में या उससे कोई भी ऐसी उपसंजाति, आवेदन या कार्य, जिसे ऐसे न्यायालय में करने के लिए कोई पक्षकार विधि द्वारा अपेक्षित या प्राधिकृत है, वहां के सिवाय जहां तत्समय प्रवृत्त विधि द्वारा अभिव्यक्त रूप से अन्यथा हो, पक्षकार द्वारा स्वयं या उसके मान्यता प्राप्त अभिकर्ता द्वारा या उसकी ओर से, यथास्थिति, उपसंजात होने वाले, आवेदन कराने वाले या कार्य करने वाले उसके प्लीडर द्वारा किया जा सकेगा :

परन्तु यदि न्यायालय ऐसा निर्दिष्ट करे तो ऐसी उपसंजाति स्वयं पक्षकार द्वारा की जाएगी ।

2. **मान्यताप्राप्त अभिकर्ता** - पक्षकारों के जिन मान्यताप्राप्त अभिकर्ताओं द्वारा ऐसी उपसंजातियां, आवेदन और कार्य किए जा सकेंगे वे निम्नलिखित हैं -

(क) ऐसे मुख्तारनामे धारित करने वाले व्यक्ति जिनमें उन्हें ऐसे पक्षकारों की ओर से ऐसी उपसंजातियां, आवेदन और कार्य करने के लिए प्राधिकृत किया गया है ;

(ख) जहां कोई भी अन्य अभिकर्ता, ऐसी उपसंजातियों,

आवेदनों और कार्यों के करने के लिए अभिव्यक्त रूप से प्राधिकृत नहीं है वहां ऐसी व्यक्ति जो उन पक्षकारों के लिए और उनके नाम से व्यापार या कारबार करते हैं, जो पक्षकार उस न्यायालय की अधिकारिता की उन स्थानीय सीमाओं में निवास नहीं करते है जिन सीमाओं के भीतर ऐसी उपसंजाति, आवेदन या कार्य ऐसे व्यापार या कारबार की ही बाबत किया जाता है ।"

विधि व्यवसाय नियम का नियम 22 और नियम 23 इस प्रकार है :-

"22. **अभिकर्ता द्वारा उपसंजात होने वाले पक्षकार** – (1) जब कोई पक्षकार प्लीडर के अतिरिक्त किसी अभिकर्ता द्वारा उपसंजात होता है, तो अभिकर्ता न्यायालय के समक्ष कोई भी उपसंजाति, या आवेदन या कोई कार्य करने से पूर्व न्यायालय में मुख्तारनामा, या अन्य लिखित प्राधिकार जो उसे प्राधिकृत करता हो या उसकी उचित रूप से बिना किसी पक्षकार की ओर से व्यापार या कारबार करने वाले अभिकर्ता के मामले में, उसके कर्ता के निवास, अभिकर्ता द्वारा उसकी ओर से किए जाने वाले व्यापार या कारबार को बताने वाला एक शपथपत्र और वाद की विषयवस्तु के साथ उसका संबंध, और यदि कोई अन्य अभिकर्ता ऐसी उपसंजाति या आवेदन या ऐसा कोई कार्य करने के लिए स्पष्ट रूप से प्राधिकृत नहीं है ।

(2) इसके पश्चात् न्यायाधीश लेख के रूप में यह अभिलिखित कर सकता है कि अभिकर्ता को पक्षकार की ओर उपसंजात होने और कार्य करने के लिए अनुज्ञात किया गया है, और जब तक उक्त अनुज्ञा नहीं दी जाती, तब तक अभिकर्ता के किसी भी उपसंजाति, आवेदन या कार्य को न्यायालय द्वारा मान्यता नहीं दी जा सकती है ।

23. अभिकर्ता द्वारा हस्ताक्षर या सत्यापन यदि किसी कार्यवाही में, विधि के किसी उपबंध या इन नियमों के अधीन, किसी पक्षकार द्वारा हस्ताक्षरित या सत्यापित किया जाना अपेक्षित

है, तो यदि इसे उसकी ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित या सत्यापित किया जाता है, तो इस संबंध में एक लिखित प्राधिकार पक्षकार द्वारा हस्ताक्षरित, विकलांग व्यक्तियों के मामले को छोड़कर, ऐसे व्यक्ति द्वारा पक्षकार के हस्ताक्षर का सत्यापन करने वाले एक शपथपत्र के साथ और कार्यवाही पर हस्ताक्षर न करने या सत्यापित न करने में पक्षकार की अक्षमता के कारणों को बताते हुए, न्यायालय में फाइल किया जाएगा ।"

9. संहिता का आदेश 6, अभिवचनों की विषयवस्तु से संबंधित है और आदेश VI का नियम 14 अभिवचनों पर हस्ताक्षर करने का उपबंध करता है । यह विनिर्दिष्ट रूप से प्रदान करता है कि प्रत्येक अभिवचन पर हस्ताक्षर किए जाएंगे और जहां अभिवचन करने वाला पक्षकार अभिवचन पर हस्ताक्षर करने में असमर्थ है, तो उस पर हस्ताक्षर करने या वाद लाने या प्रतिवाद करने के लिए उसके द्वारा प्राधिकृत किसी भी व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षर किया जा सकता है । आदेश IV का नियम 15 अभिवचनों के सत्यापन से संबंधित है, जिसमें यह कहा गया है कि किसी वादपत्र का सत्यापन या तो पक्षकार द्वारा जो अभिवचन कर रहा है या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किया जा सकता है जिसके सम्बन्ध में न्यायालय का यह समाधान हो जाए कि वह व्यक्ति उन तथ्यों से परिचित है जिनका वह सत्यापन कर रहा है । इस प्रकार, आदेश के नियम 14 और 15 के संयुक्त पठन से यह देखा जा सकता है कि अभिवचन पर या तो पक्षकार या उसके प्लीडर या सम्यक् रूप से प्राधिकृत अभिकर्ता द्वारा हस्ताक्षर किए जा सकते हैं और अभिवचनों को सत्यापित या तो अभिवचन करने वाले व्यक्ति द्वारा या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा जो मामले के तथ्यों से परिचित हो, किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त संहिता के आदेश 3, नियम 1 के आधार पर, किसी भी न्यायालय में कोई भी ऐसी उपसंजाति, आवेदन या कार्य, जो स्वयं पक्षकार द्वारा किए जाने के लिए विधि के अधीन अपेक्षित या प्राधिकृत है, तो उसे पक्षकार के मान्यता प्राप्त अभिकर्ता द्वारा किए जाने हेतु अनुज्ञात किया जा सकता है । तथापि, ऐसा करना उस अपवाद के अधीन जहां कोई भी विधि स्पष्ट रूप से ऐसा करने को निषिद्ध करती है । आदेश 3, के उप-नियम (2) के अनुसार मान्यताप्राप्त अभिकर्ता ऐसे

व्यक्ति को कहा जा सकता है, जो एक मुख्तारनामा धारक है तथा विनिर्दिष्ट रूप से मूल पक्षकार की ओर से कार्य करने के लिए प्राधिकृत हैं । इस प्रकार किसी भी न्यायालय में कोई भी उपसंजाति, आवेदन या कार्य प्रभावी रूप से या तो किसी पक्षकार द्वारा स्वयं या उसके मुख्तारनामा धारक द्वारा किया जा सकता है ।

10. संहिता का आदेश 3, नियम 1 किसी वाद या कार्यवाही में एक पक्षकार का प्रतिनिधित्व उसके प्लीडर द्वारा किए जाने के लिए सशक्त करता है, लेकिन जहां तक कुटुंब न्यायालय में कार्यवाही का संबंध है वहां प्लीडर द्वारा प्रतिनिधित्व नहीं किया जा सकता और न ही उसे कोई अधिकार होगा । आदेश 3, नियम 1 का प्रवर्तन तत्समय प्रवृत्त विधि के अध्यधीन होगा । मामले में उक्त अपवर्जन के अतिरिक्त, अधिनियम की धारा 13 आदेश 3, नियम 1 के प्रर्वतन को इस सीमा तक प्रतिषिद्ध करती है कि मामले का प्रतिनिधित्व विधिक व्यवसायी द्वारा किया जाए । आदेश 3, नियम 2 के अधीन नियुक्त मान्यताप्राप्त अभिकर्ता प्लीडर से भिन्न हैं । तथापि, मान्यताप्राप्त अभिकर्ता विधिक व्यवसायी नहीं हो सकता । विधिक व्यवसायियों की उपस्थिति पर प्रतिषेध का विस्तार मान्यताप्राप्त अभिकर्ता तक नहीं किया जा सकता । अधिनियम या नियमों में किसी भी प्राधिकृत अभिकर्ता पर जो विधिक व्यवसायी नहीं है अर्जी फाइल करने के लिए कोई भी प्रतिषेध नहीं है ।

11. केरल सिविल रूल्स ऑफ प्रैक्टिस, 1971 (केरल विधि व्यवसाय नियम, 1971) का नियम 22 के अधीन यह उपबंध किया गया है कि जब कोई पक्षकार प्लीडर के बजाय अभिकर्ता के माध्यम से हाजिर होता है, तो अभिकर्ता न्यायालय में मुख्तारनामा या अन्य लिखित प्राधिकार जो उसे प्राधिकृत करता हो, की अधिप्रमाणित प्रति फाइल करेगा और न्यायाधीश उस पर लिखित रूप में यह अभिलिखित कर सकता है कि अभिकर्ता को पक्षकार की ओर से हाजिर होने और कार्य करने की अनुज्ञा दी जाती है । केरल विधि व्यवसाय नियम के नियम 23 के अधीन यह उपबंध किया गया है कि अभिकर्ता को अभिवचन पर हस्ताक्षर या सत्यापन करने के लिए न्यायालय के समक्ष एक लिखित प्राधिकार पेश करना होगा । इस न्यायालय की एकल न्यायपीठ ने

नारायणन नायर बनाम **जॉन कुरियन**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि केरल विधि व्यवसाय नियम के नियम 23 के साथ पठित आदेश 6, नियम 14 के अधीन सम्यक् प्राधिकार गठित करने के लिए मौखिक प्राधिकरण भी प्राधिकरण का गठन करने के लिए पर्याप्त होगा ।

12. कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 (जिसे संक्षेप में "अधिनियम 1984" कहा गया है) जिसे अनावश्यक औपचारिकताओं के बिना कौटुंबिक विवादों के निपटारे की क्रियाविधि के लिए अधिनियमित किया गया था वह वैवाहिक सुख और सद्भाव के उद्देश्य को आगे बढ़ाने के आशय के लिए धारा 13ख के अधीन पारस्परिक सहमति से विवाद के विघटन का दावा करने वाले विवाह के पक्षकारों के बीच वाद या कार्यवाही पर विचारण करने की अधिकारिता कुटंब न्यायालय को प्रदान करता है । अधिनियम की धारा 10 यह उपबंध करती है कि संहिता के उपबंध कुटुंब न्यायालय के समक्ष सभी वाद या कार्यवाहियों पर लागू होंगे । यह भी कथन किया गया है कि कुटुंब न्यायालय को संहिता के उपबंधों के प्रयोजनार्थ सिविल न्यायालय समझा जाएगा और उसके पास ऐसे न्यायालयों की सभी शक्तियां होंगी । संहिता की धारा 141 यह उपबंध करती है कि किसी भी सिविल अधिकारिता के न्यायालय की सभी कार्यवाहियों में वादों के संबंध में संहिता में प्रदान की गई प्रक्रिया का पालन जहां तक इसे लागू किया जा सकता है वहां तक किया जाएगा । इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि कुटुंब न्यायालय संहिता का पालन करने के लिए बाध्य है और अधिनियम के उपबंधों के प्रयोजन के लिए इसे एक सिविल न्यायालय समझा जाता है और इसके पास सिविल न्यायालय की शक्तियां हैं । या तो कुटुंब न्यायालय अधिनियम या केरल उच्च न्यायालय द्वारा विरचित किए गए नियम या अधिनियम की धारा 23 के अधीन केरल सरकार द्वारा विरचित किए गए नियम मुख्तारनामा धारक के माध्यम से कुटुंब न्यायालय के समक्ष अर्जी प्रस्तुत करने के लिए प्रतिषेध नहीं करते हैं । संहिता के अधीन मुख्तारनामा धारक की शक्ति को निराकृत करने का कोई भी उपबंध अधिनियम, 1955 की धारा 13ख में अंतर्विष्ट नहीं है और इसलिए अधिनियम, 1955 की धारा

[1]1988 (1) के. एल. टी. 673.

13ख के अधीन फाइल कार्यवाही को नियंत्रित करने की प्रक्रिया संहिता के आदेश 3 के साथ-साथ आदेश 6 द्वारा शासित होगी । इसके अतिरिक्त, अधिनियम, 1955 की धारा 20(2) न्यायालय को वादपत्र या सत्यापन के लिए विधि द्वारा आवश्यक रीति से पक्षकार द्वारा या याची द्वारा स्वयं या किसी अन्य सक्षम व्यक्ति द्वारा फाइल की गई अर्जी प्राप्त करने के लिए सक्षम बनाती है ।

13. **पुथियापुरयिल अब्दुल सलाम** बनाम **पी. पी. मरियुम्मा और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की एकल न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया है कि मुख्तारनामा कुटुंब न्यायालय के समक्ष पक्षकार का प्रतिनिधित्व कर सकता है और यह कि मामले का परिनिर्धारण करने संबंधी न्यायालय के प्रयास को विफल नहीं करेगा । वह ऐसा मामला था जो कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 13 के अधीन सृजित हुआ था । पति ने अर्जी मुख्तारनामा धारक के प्रतिनिधित्व में अपने विरुद्ध पारित एकपक्षीय आदेश को अपास्त करने के लिए अभियोग चलाने के लिए अर्जी फाइल की । **कुन्ही पुरयिल मुकुंदन नवीन** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यह पक्षकार के लिए खुला है कि वह या तो व्यक्तिगत रूप से या मुख्तारनामा धारक के माध्यम से कुटुंब न्यायालय के समक्ष अर्जी प्रस्तुत करे । वह क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद के लिए अधिनियम, 1955 की धारा 13(1)(क) के अधीन फाइल किया गया मामला था । **जेन चाकुप्राकल और अन्य** बनाम **मैक्स जार्ज**[2] वाले मामले में पुनः इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने यह मत व्यक्त किया कि मुख्तारनामा धारक के लिए एकपक्षीय आदेश अपास्त करने के लिए आवेदन फाइल करने या कुटुंब न्यायालय के समक्ष पक्षकारों को मुख्तारनामा धारक के माध्यम से उपस्थित होने के लिए न्यायालय की इजाजत की ईप्सा के लिए आवेदन फाइल करने पर भी कोई प्रतिषेध नहीं है । आभूषणों और मुद्रा की वसूली के लिए कुटुंब न्यायालय के समक्ष फाइल एक वाद में इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ

---

[1] 2007 (1) के. एच. सी. 156.

[2] 2017 (1) के. एच. सी. 796.

द्वारा **सुमा आर.** बनाम **राजन पिल्लई**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि प्रतिवादी मुख्तारनामा धारक के माध्यम से उपस्थित हो सकता है । **नवदीप कौर** बनाम **मनिंदर सिंह अहलूवालिया**[2] वाले मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद के लिए फाइल की गई अर्जी की प्रस्तुति के समय पर पक्षकारों की व्यक्तिगत उपस्थिति अनिवार्य नहीं है तथा पक्षकार का प्रतिनिधित्व विधिवत् गठित मुख्तारनामे के माध्यम से किया जा सकता है । इसी तरह का मत उत्तर प्रदेश उच्च न्यायालय की लखनऊ न्यायपीठ ने **कंवलीजीत सचदेव** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[3] वाले मामले में दिया गया था । **दसम विजय रामाराव** बनाम **एम. साई श्री**[4] वाले मामले में हैदराबाद उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि मुख्तारनामा धारक कुटुंब न्यायालय के समक्ष मालिक की ओर से अभिसाक्ष्य दे सकता है तथा वह साक्ष्य भी प्रस्तुत कर सकता है । **सुधा रामलिंगम** बनाम **रजिस्ट्रार जनरल, मद्रास और एक अन्य**[5] वाले मामले में उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद की अर्जी में, मुख्तारनामा के लिए पक्षकार की ओर से उपस्थित होने में विधिक अड़चन नहीं है । लेकिन जब भी कुटुंब न्यायालय द्वारा ऐसा नियत या निर्दिष्ट किया जाए तो पक्षकार को न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होना चाहिए । **हर्षदा भरत देशमुख** बनाम **भरत अप्पासाहेब देशमुख**[6] वाले मामले में बम्बई उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि मुख्तारनामा के माध्यम से कुटुंब न्यायालय के समक्ष अधिनियम, 1955 की धारा 13ख के अधीन पारस्परिक सहमति के लिए संयुक्त अर्जी को फाइल करने में कोई विधिक अड़चन नहीं है । **राजा बनर्जी** बनाम **अल्का बनर्जी**[7] वाले मामले में दिल्ली उच्च

---

[1] 2007 (4) के. एल. टी. 379.

[2] ए. आई. आर. 2010 पी. और एच. 90.

[3] 2016 (6) ए. एल. जे. 589.

[4] ए. आई. आर. 2015 हैदराबाद 191.

[5] 2015 के. एच. सी. 1680.

[6] ए. आई. आर. 2018 बम्बई 148.

[7] ए. आई. आर. 2019 दिल्ली 1.

न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि विधि पक्षकारों को कुटुंब न्यायालय के समक्ष मुख्तार के माध्यम से उपस्थित होने और कथन करने की अनुज्ञा देती है ।

14. ऊपर विस्तार से चर्चा किए गए कानूनी उपबंधों और पूर्व निर्णय के विश्लेषण से इस पर कोई विवाद नहीं हो सकता है कि पक्षकार का मुख्तार कुटुंब न्यायालय सहित किसी भी सिविल अधिकारिता वाले न्यायालय में उपस्थित हो सकता है और मुख्तारनामे में विनिर्दिष्ट कार्य को कर सकता है । प्राधिकारियों ने इसे इस सीमा तक माना है कि मुख्तार अक्षम साक्षी नहीं है और वह न्यायालय में उपस्थित हो सकता है और साक्षी के रूप में उन तथ्यों के संबंध में अभिसाक्ष्य दे सकता है जो उसकी जानकारी में है । **जानकी वाशदेव भोजवानी** बनाम **इंडसइंड बैंक लिमिटेड**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि संहिता के आदेश 3, नियम 1 और 2 में प्रयुक्त शब्द 'कार्य' केवल 'मुख्तारनामे द्वारा लिखित में प्रदान की गई शक्ति का प्रयोग करके किए गए कार्यों' के संबंध तक ही सीमित हैं और इसमें मालिक के स्थान पर और उसके बदले में अभिसाक्ष्य दिया जाना सम्मिलित नहीं होगा । यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि वह मालिक के लिए मामले में अभिसाक्ष्य नहीं दे सकता है जिसके बारे में केवल मालिक को व्यक्तिगत जानकारी हो और जिसके संबंध में मालिक प्रतिपरीक्षा का हकदार है ।

15. आक्षेपित आदेश के परिशीलन से यह पता चलता है कि मूल अर्जी को वापस करने का निचले न्यायालय द्वारा कोई भी कारण नहीं बताया गया है । जो कहा गया है कि वह यह है कि अधिनियम की धारा 13ख के अधीन विवाह-विच्छेद के लिए संयुक्त अर्जी मुख्तारनामा धारक के माध्यम से फाइल नहीं की जा सकती । जब विवाह के दो पक्षकार कुटुंब न्यायालय के समक्ष आते हैं और अधिनियम, 1955 की धारा 13ख के अधीन पारस्परिक सहमति से अपने विवाह को समाप्त करने के लिए कहते हैं, तो धारा 13ख की उपधारा (2) के पक्षकारों

---

[1] ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 439.

द्वारा प्रस्तुत किए गए समावेदन को उस समय तक स्थगित करना होगा जिसकी अवधि 6 माह से कम न हो । इसके अतिरिक्त उपधारा (2) में यह अपेक्षित है कि पक्षकारों को सुनने के पश्चात् न्यायालय का समाधान हो जाने पर और शुद्धता के संबंध में ऐसी जांच के पश्चात् जिसे वह अर्जी में किए गए प्रकथनों के लिए ठीक समझे, विवाह-विच्छेद की डिक्री यह घोषित करते हुए पारित करेगा कि डिक्री की तारीख से विवाह का विघटन कर दिया गया है । साधारणतया, उस समय दोनों पक्षकारों की भौतिक उपस्थिति पर बल दिया जाता है और पक्षकारों की सहमति की पुष्टि के लिए उनकी पहचान को सत्यापित करना आवश्यक है । इससे स्पष्ट रूप से मूल अर्जी को वापस करते समय न्यायालय को बल मिलेगा । ऐसी जांच के समय यदि न्यायालय आवश्यक समझे, तो पक्षकारों को भौतिक रूप से उपस्थिति कराया जा सकता है । केवल इसलिए कि अर्जी अधिनियम, 1955 की धारा 13ख के अधीन पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद के लिए फाइल की गई है, कि कोई पक्षकार सम्यक् रूप से गठित मुख्तारनामा धारक के माध्यम से कार्यवाही प्रारंभ नहीं कर सकता, क्योंकि अधिनियम, 1955 की धारा 13ख में ऐसा कोई भी उपबंध अंतर्विष्ट नहीं है, जो आदेश 3 के नियम 1 और 2 के अधीन मुख्तारनामा धारक की शक्ति को निराकृत करता हो और संहिता का आदेश 6, नियम 14 और अधिनियम, 1955 की धारा 20(2) पक्षकार की ओर से स्वयं अर्जीदार द्वारा या कुछ सक्षम व्यक्तियों द्वारा वादपत्र या अर्जी के सत्यापन के लिए विधि द्वारा अपेक्षित रीति में फाइल अर्जी को, प्राप्त करने में न्यायालय को समर्थ बनाता है । इसके अतिरिक्त, केरल उच्च न्यायालय द्वारा विरचित किए गए नियम या कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 23 के अधीन केरल सरकार द्वारा विरचित किए गए नियम मुख्तारनामा धारक के माध्यम से कुटुंब न्यायालय के समक्ष अर्जी प्रस्तुत करने को प्रतिषिद्ध नहीं करते हैं । इसलिए, अधिनियम, 1955 की धारा 13ख के अधीन अर्जी के संबंध में कोई भी अंतर नहीं किया जा सकता है । इन सभी कारणों से हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि मुख्तारनामा धारक कुटुंब न्यायालय के समक्ष अधिनियम, 1955 की धारा 13ख के अधीन

पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद की अर्जी पर हस्ताक्षर कर सकता है, फाइल कर सकता है, अभियोजन चला सकता है ।

16. यह सत्य है कि अधिनियम, 1955 की धारा 13ख के अधीन कुटुंब न्यायालय द्वारा की जाने वाली जांच में पक्षकारों के उत्तरों और इच्छा को सीधे पक्षकारों से ही प्राप्त करना चाहिए । जैसा कि विधि में अनुध्यात है, न्यायालय उस चरण पर पक्षकारों की व्यक्तिगत उपस्थिति पर जोर देने के लिए स्वतंत्र है । जहां पर पक्षकार व्यक्तिगत रूप से न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने में असमर्थ हैं वहां उन्नत तकनीक जैसे वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग का उपयोग करके ऐसे मामले में अधिनियम, 1955 की धारा 13ख के अधीन अनुध्यात जांच पक्षकारों की भौतिक उपस्थिति पर जोर दिए बिना की जा सकती है । कुटुंब न्यायालय को अपनी प्रक्रिया को व्यवस्थित करने के लिए व्यापक शक्ति प्रदान की गई है । **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **डा. प्रफुल्ल बी. देसाई**[1] वाले मामले में भारत के उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि साक्षियों के साक्ष्य को वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से लिया जा सकता है । **सैंथिनी** बनाम **विजया वेंकटेश**[2] वाले ममाले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि कुटुंब न्यायालय की कार्यवाही में वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग की अनुमति तब दी जा सकती है जब दोनों पक्षकार वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से मामले की सुनवाई के लिए सहमति ज्ञापन फाइल करते हैं । अधिनियम, 1955 की धारा 13ख के अधीन अर्जी, विवाह के दोनों पक्षकारों द्वारा पारस्परिक सहमति से संयुक्त रूप से फाइल की जाती है । इसलिए, धारा 13ख के अधीन अनुध्यात जांच, वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग सुविधा का उपयोग करके संचालित की जा सकती है । वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से पक्षकारों के साथ संपर्क करने पर यदि कुटुंब न्यायालय को पक्षकारों की व्यक्तिगत शारीरिक उपस्थिति आवश्यक मालूम देती है, तो उस समय न्यायालय के लिए यह समुचित होगा कि वह पक्षकारों को न्यायालय के समक्ष शारीरिक रूप से उपस्थित होने का निदेश दे । मामले के तथ्यों की बात करें, तो केरल विधि व्यवसाय

---

[1] (2003) 4 एस. सी. सी. 601.

[2] ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 5745.

नियम के नियम 22 के अधीन प्रथम अर्जीदार द्वारा अपने भाई के पक्ष में निष्पादित मुख्तारनामा प्राप्त करने की अर्जी के साथ मूल अर्जी कुटुंब न्यायालय के समक्ष फाइल की गई थी । मूल अर्जी को प्रथम याची के मुख्तारनामा धारक द्वारा सत्यापित और हस्ताक्षरित किया गया था । अर्जीदार ने मूल अर्जी के पैरा 8 में विनिर्दिष्ट रूप से यह अभिवाक् किया कि अधिनियम, 1955 की धारा 13ख(2) के अधीन जांच या तो वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से या आग्रह किए जाने पर कुटुंब न्यायालय के समक्ष प्रथम याची की व्यक्तिगत उपस्थिति के माध्यम से की जा सकती है । प्रथम याची अपनी भौतिक उपस्थिति या वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से कुटुंब न्यायालय का सहयोग करने का वचन देता है । इन सभी कारणों से, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि निचले न्यायालय द्वारा प्रथम याची को उसके भाई के द्वारा मुख्तारनामा धारक के रूप में प्रतिनिधित्व करने की अनुज्ञा देने के आवेदन पर विचार करने से इनकार करने वाला आदेश कायम नहीं रह सकता । निचले न्यायालय ने प्रथम याची को मुख्तारनामा धारक द्वारा प्रतिनिधित्व करने की अनुज्ञा देने के आवेदन पर इस आधार पर विचार करने से इनकार करके अवैधता की है कि यह अधिनियम की धारा 13ख के अधीन पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद के लिए फाइल की गई एक संयुक्त अर्जी है ।

ऊपर कथित कारणों से, हम मूल अर्जी को स्वीकार करते हैं । हम कुटुंब न्यायालय, तलश्शेरी को मूल याचिका (प्रदर्श पी-1) को अभिलेख पर प्राप्त करने और विधि के अनुसार इसका निपटान करने के निदेश देते हैं । हम यह स्पष्ट करते हैं, जैसाकि विधि में अनुध्यात है कि याचियों को मुख्तारनामा धारक द्वारा कार्यवाही प्रारंभ करने की अनुज्ञा देने से, वाद के किसी भी प्रक्रम पर याचियों को व्यक्तिगत रूप से या वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से उपस्थित होने का आदेश करने संबंधी न्यायालय की शक्ति कम नहीं होगी ।

रिट याचिका मंजूर की गई ।

अम./अस.

प्रेम लाल यादव

बनाम

राजेन्द्र प्रसाद चंद्रवंशी और अन्य

(2011 की द्वितीय अपील सं. 119)

तारीख 1 मार्च, 2021

न्यायमूर्ति संजय के. अग्रवाल

सुखाचार अधिनियम, 1882 (1882 का 5) – धारा 13 [सपठित विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 38(3)(घ) और धारा 13(3)(घ)] – सुखाचार अधिकार और स्थायी व्यादेश का वाद फाइल किया जाना – वादी और प्रतिवादी का वाद भूमि पर संयुक्त रूप से निस्तार अधिकार रखना – वादी को उक्त भूमि पर सुखाचार का अधिकार दिया जाना किन्तु बाधा/निर्माण हटाने सम्बन्धी स्थायी व्यादेश मंजूर न किया जाना – जब एक बार वादी का उक्त भूमि पर सुखाचार का अधिकार सिद्ध हो गया है और प्रतिवादी ने प्रथम अपील में उसका विरोध भी नहीं किया है तब ऐसी स्थिति में वादी स्थायी व्यादेश के पारिणामिक अनुतोष का हकदार है और प्रतिवादी सं. 1 को उक्त भूमि में हस्तक्षेप किए जाने से रोका जाएगा और बाधा/निर्माण हटाने संबंधी स्थायी व्यादेश मंजूर किया जाएगा अन्यथा न्यायिक कार्यवाहियों को बढ़ावा मिलेगा और यह अधिनियम, 1963 की धारा 38(3)(घ) में अन्तर्विष्ट उपबंधों के प्रतिकूल होगा ।

इस मामले में के वादी ने ग्राम मंगला, तहसील और जिला बिलासपुर में स्थित खसरा सं. 1395/31 और 1095/13 पर सुखाचार के अधिकार और वहां से प्रतिवादी सं. 1 द्वारा पैदा की गई बाधा अर्थात् चाहरदीवारी तथा लोहे का फाटक हटाए जाने हेतु व्यादेश की डिक्री पारित किए जाने की ईप्सा करते हुए वाद फाइल किया । वादी ने उक्त खसरा में 2 × 49 वर्ग फुट भूमि का कब्जा बहाल करने हेतु भी ईप्सा की जिस

पर प्रतिवादी सं. 1 ने चाहरदीवारी बनाकर रुकावट पैदा कर रखी थी । प्रतिवादी सं. 1 ने वाद का विरोध करते हुए लिखित कथन फाइल किया और वाद में किए गए प्रकथनों से इनकार करते हुए अन्य बातों के साथ यह कथन किया कि वादी सुखाचार के अधिकार का हकदार नहीं है जिसके लिए उसने दावा किया है और यह कि प्रतिवादी ने वादी की भूमि पर अतिक्रमण नहीं किया है और इस प्रकार फाइल किया गया दावा खारिज किए जाने योग्य है । विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य का मूल्यांकन करने पर तारीख 29 अप्रैल, 2010 के अपने आदेश और डिक्री द्वारा वाद में आंशिक रूप से डिक्री पारित की और यह अभिनिर्धारित किया कि वादी को वादगत मार्ग में सुखाचार का अधिकार प्राप्त है किंतु यह भी अभिनिर्धारित किया कि वादी 2 × 49 वर्ग फुट के मार्ग वाले भूखंड का कब्जा प्राप्त करने हेतु डिक्री का हकदार नहीं है क्योंकि वादी यह साबित नहीं कर सका है कि प्रतिवादी सं. 1 ने उसकी भूमि पर अतिक्रमण किया है । वादी द्वारा अपील फाइल किए जाने पर प्रथम अपीली न्यायालय ने विचारण के निर्णय की पुष्टि की है और अपील खारिज की है जिसके विरुद्ध सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील वादी द्वारा फाइल की गई । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान मामले के तथ्यों पर ऊपर कथित विधिक स्थिति के आलोक में विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि विचारण द्वारा निकाला गया यह निष्कर्ष कि ग्राम मंगला में स्थित 306 वर्ग फुट वाला भूखंड, जो खसरा सं. 1395/31 और 1095/13 का भाग है, वह भूमि है जिस पर वादी और प्रतिवादी सं. 1 का संयुक्त रूप से निस्तार अधिकार है । इस निष्कर्ष को इस न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी सं. 1 द्वारा प्रथम अपील/प्रति-आक्षेप के माध्यम से चुनौती नहीं दी गई है, इस प्रकार इस निष्कर्ष को अंतिम माना जाएगा । न तो विचारण न्यायालय ने और न ही प्रथम अपील न्यायालय ने वादी द्वारा दावा किए जाने पर भी स्थायी व्यादेश मंजूर किए जाने के मुद्दे पर विचार किया है और अपील में इस मुद्दे को उठाया गया है किंतु यह सुस्थापित

तथ्य है कि वादी को इस घोषणा की डिक्री प्राप्त करने का हकदार पाया गया है कि उसे उक्त भूखंड पर सुखाचार का अधिकार प्राप्त है किंतु अपीलार्थी/वादी के पक्ष में स्थायी रूप से यह व्यादेश पारित नहीं किया गया है कि प्रतिवादी सं. 1 उक्त भूखंड से बाधा हटाए । जब एक बार वादी को डिक्री के लिए हकदार अभिनिर्धारित कर दिया गया है कि वह वादगत भूमि पर सुखाचार के अधिकार का हकदार है, तब इस आदेश का लाभ पाने के लिए वादी के पक्ष में पारिणामिक अनुतोष के रूप में स्थायी व्यादेश भी पारित किया जाना चाहिए था, यदि ऐसा नहीं किया जाता है तब वादी को नए सिरे से स्थायी व्यादेश का वाद फाइल करने के लिए विवश होना पड़ेगा । उपरोक्त निर्णयों में अधिकथित विधि के सिद्धांत का अनुसरण करते हुए वर्तमान मामले के तथ्यों पर पुन: विचार करने और अधिनियम, 1963 की धारा 38(3)(घ) में अन्तर्वलित प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि अपीलार्थी/वादी ने वाद भूमि पर सुखाचार अधिकार सिद्ध कर दिया है जिसके संबंध में निचले दोनों न्यायालयों द्वारा यह अभिनिर्धारित किया जा चुका है कि वादी स्थायी व्यादेश के पारिणामिक अनुतोष का हकदार है और प्रतिवादी सं. 1 को उक्त भूमि में हस्तक्षेप किए जाने से रोका जाए, अन्यथा न्यायिक कार्यवाहियों को बढ़ावा मिलेगा और यह अधिनियम, 1963 की धारा 38(3)(घ) में अन्तर्विष्ट उपबंधों के प्रतिकूल होगा और वादी के पक्ष में निचले दोनों न्यायालयों द्वारा सुखाचार अधिकार की घोषणा किए जाने से वादी को कोई लाभ नहीं होगा । तद्नुसार, द्वितीय अपील भागत: मंजूर की जाती है और यह निदेश देते हुए डिक्री पारित की जाती है कि वादी भी प्रश्नगत भूमि अर्थात् 6 × 49 वर्ग फुट वाले भूखंड से निस्तार अधिकारों के लिए बाधा/अवैध निर्माण को 30 दिनों के भीतर प्रतिवादी सं. 1 को स्वयं या उसके अभिकर्ता को हटाना पड़ेगा जिसका उल्लेख वादपत्र के साथ संलग्न अनुसूची “ए”, जो वादपत्र का भाग है, में किया गया है और प्रतिवादी सं. 1, उक्त भूखंड/मार्ग में वादी द्वारा अपने निस्तार अधिकारों का प्रयोग किए जाने में कोई बाधा/रुकावट पैदा नहीं करेगा । (पैरा 15, 16, 19 और 20)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2015] (2015) 3 एस. सी. सी. 624 = ए. आई. आर. ऑनलाइन 2014 एस. सी. 174 : **श्री गंगई विनयगार टेम्पल और एक अन्य** बनाम **मीनाक्षी अम्मल और अन्य** ; 12

[2001] (2001) 3 एस. सी. सी. 179 = ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 965 : **संतोष हजारी** बनाम **पुरुषोत्तम तिवारी (मृतक)** ; 11

[1972] ए. आई. आर. 1972 पटना 490 : **सरबलाल झा और अन्य** बनाम **उचेश्वर झा और अन्य** ; 5, 18

[1957] ए. आई. आर. 1957 एम. पी. 8 : **मोहम्मद हुसैन रमजान हुसैन** बनाम **अध्यक्ष, मंडी समिति** ; 17

[1956] ए. आई. आर. 1956 एस. सी. 593 : **नागूबाई अम्मल और अन्य** बनाम **बी. शामा राव और अन्य** । 14

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2011 की द्वितीय अपील सं. 119.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

याची की ओर से श्री एच. वी. शर्मा

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री बारूदीन खान और श्री रवि भगत, उप सरकारी अधिवक्ता

न्यायमूर्ति संजय के. अग्रवाल – अपीलार्थी/वादी द्वारा फाइल की गई इस द्वितीय अपील में सम्मिलित, सूत्रबद्ध और उत्तर दिए जाने वाले विधि के सारवान् प्रश्न निम्नानुसार हैं :–

"1. क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में निचले न्यायालय ने इस पर विचार न करके त्रुटि कारित की है कि वादी वाद के पैरा 14ख और ग में उल्लिखित व्यादेश की डिक्री प्रदान किए जाने के लिए हकदार है या नहीं ?

2. क्या स्थायी व्यादेश प्राप्त करने संबंधी वादी के अधिकार को लेकर विचारण के लिए समुचित विवाद्यक विरचित न किए जाने से विचारण प्रक्रिया दूषित हो गई है ?"

[सुविधा के लिए पक्षकारों के लिए इसमें इसके पश्चात् उसी प्रकार निर्दिष्ट किया जाएगा जिस प्रकार उन्हें विचारण न्यायालय के समक्ष निर्दिष्ट किया गया था]

2. इस मामले में के वादी ने ग्राम मंगला, तहसील और जिला बिलासपुर में स्थित खसरा सं. 1395/31 और 1095/13 पर सुखाचार के अधिकार और वहां से प्रतिवादी सं. 1 द्वारा पैदा की गई बाधा अर्थात् चाहरदीवारी तथा लोहे का फाटक हटाए जाने हेतु व्यादेश की डिक्री पारित किए जाने की ईप्सा करते हुए वाद फाइल किया । वादी ने उक्त खसरा में 2 × 49 वर्ग फुट भूमि का कब्जा बहाल करने हेतु भी ईप्सा की जिस पर प्रतिवादी सं. 1 ने चाहरदीवारी बनाकर रुकावट पैदा कर रखी थी ।

3. प्रतिवादी सं. 1 ने वाद का विरोध करते हुए लिखित कथन फाइल किया और वाद में किए गए प्रकथनों से इनकार करते हुए अन्य बातों के साथ यह कथन किया कि वादी सुखाचार के अधिकार का हकदार नहीं है जिसके लिए उसने दावा किया है और यह कि प्रतिवादी ने वादी की भूमि पर अतिक्रमण नहीं किया है और इस प्रकार फाइल किया गया दावा खारिज किए जाने योग्य है ।

4. विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य का मूल्यांकन करने पर तारीख 29 अप्रैल, 2010 के अपने आदेश और डिक्री द्वारा वाद में आंशिक रूप से डिक्री पारित की और यह अभिनिर्धारित किया कि वादी को वादगत मार्ग में सुखाचार का अधिकार प्राप्त है किंतु यह भी अभिनिर्धारित किया कि वादी 2 × 49

वर्ग फुट के मार्ग वाले भूखंड का कब्जा प्राप्त करने हेतु डिक्री का हकदार नहीं है क्योंकि वादी यह साबित नहीं कर सका है कि प्रतिवादी सं. 1 ने उसकी भूमि पर अतिक्रमण किया है । वादी द्वारा अपील फाइल किए जाने पर प्रथम अपीली न्यायालय ने विचारण के निर्णय की पुष्टि की है और अपील खारिज की है जिसके विरुद्ध सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील वादी द्वारा फाइल की गई है जिसमें इस न्यायालय द्वारा दो सारभूत प्रश्न विरचित किए गए हैं जिनका उल्लेख पूर्णता के लिए इस निर्णय के प्रथम पैरा में किया गया है ।

5. अपीलार्थी/वादी के विद्वान् काउंसेल श्री एच. वी. शर्मा ने यह दलील दी है कि प्रथम अपीली न्यायालय ने इस पर विचार न करके त्रुटि की है कि क्या वादी वाद के पैरा 14ख और ग में यथाउल्लिखित व्यादेश की डिक्री पाने का हकदार नहीं है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि स्थायी व्यादेश प्राप्त करने हेतु अपीलार्थी के अधिकार से संबंधित विचारण हेतु समुचित विवाद्यक विरचित न किए जाने से निचले दोनों न्यायालयों द्वारा निकाले गए निष्कर्ष इतने दूषित हो जाते हैं कि वे अपास्त किए जाने चाहिएं । श्री शर्मा ने **सरबलाल झा और एक अन्य** बनाम **उचेश्वर झा और अन्य**[1] वाले मामले में पटना उच्च न्यायालय के निर्णय का अवलंब अपनी दलील के समर्थन में लिया है ।

6. इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थी सं. 1/प्रतिवादी सं. 1 की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री बदरुद्दीन खान ने यह दलील दी है कि विचारण न्यायालय ने वादी को पहले ही सुखाचार का अधिकार डिक्रीत किया है जिस पर प्रतिवादी ने न तो प्रथम अपील न्यायालय के समक्ष और न ही इस न्यायालय के समक्ष अपील फाइल करके कोई प्रश्न उठाया है और इस प्रकार डिक्री अंतिम हो गई है और 2 × 49 वर्ग फुट वाली भूमि का कब्जा वादी को प्रदान नहीं किया गया है क्योंकि वादी यह साबित नहीं कर सका है कि प्रतिवादी सं. 1 ने उसकी भूमि पर अतिक्रमण किया है ।

---

[1] ए. आई. आर. 1972 पटना 490.

7. मैंने पक्षकारों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेलों को सुना है और इसमें इसके ऊपर दी गई परस्पर विरोधी दलीलों पर गहन विचार किया है और साथ ही अभिलेख का व्यापक परिशीलन किया है ।

8. भारतीय सुखाचार अधिनियम, 1882 की धारा 13 के अधीन 2 × 49 वर्ग फुट वाले भूखंड पर सुखाचार के अधिकार और उसके कब्जे की पुनर्प्राप्ति का दावा करते हुए वादी द्वारा फाइल किए गए वाद में विचारण न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि खसरा सं. 1395/31 और 1095/13 में से 306 वर्ग फुट भूमि वादी और प्रतिवादी सं. 1 के पास संयुक्त निस्तार अधिकार के रूप में है किंतु आगे यह अभिनिर्धारित किया है कि वादी यह साबित नहीं कर सका है कि प्रतिवादी सं. 1 ने 2 × 49 वर्ग फुट भूमि पर निर्माण कार्य करके अतिक्रमण किया है । विचारण न्यायालय ने विवाद्यक सं. 2 का उत्तर देते हुए यह अभिनिर्धारित किया है कि वादी यह सिद्ध करने में असफल रहा है कि प्रतिवादी सं. 1 ने 2 × 49 वर्ग फुट भूमि पर अतिक्रमण किया है क्योंकि इस संबंध में कोई भी सीमांकन रिपोर्ट फाइल नहीं की गई है और यह भी सिद्ध नहीं हो पाया है कि क्या 2 × 49 वर्ग फुट भूमि पर कब्जा किया गया है और वादी की ओर से साक्षियों ने उसकी भूमि पर प्रतिवादी सं. 1 द्वारा अतिक्रमण किए जाने के बाबत कोई साक्ष्य नहीं दिया है जो कि वादी के पक्ष में डिक्री का आदेश किए जाने हेतु अत्यंत आवश्यक था ।

9. वादी ने वाद के पैरा 14(ग) में स्पष्ट रूप से यह दावा किया है कि उसे प्रतिवादी सं. 1 या उसके अभिकर्ता को निस्तार मार्ग से अवरुद्ध करते हुए व्यादेश मंजूर किया जाए और साथ ही वादी ने यह भी दावा किया है कि उसे वादगत भूमि पर घोषणा की डिक्री के रूप में सुखाचार का अधिकार दिलाया जाए ।

10. विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों का मूल्यांकन करने पर यह डिक्रीत किया कि वादी और प्रतिवादी सं. 1 को वादगत भूमि अर्थात् 306 वर्ग फुट वाले मार्ग पर सुखाचार का अधिकार है किंतु इस संबंध में न तो स्थायी व्यादेश के

लिए विवाद्यक विरचित किया गया और न ही स्थायी व्यादेश मंजूर किया गया । वादी ने प्रथम अपील न्यायालय के समक्ष विशेष अभिवाक् किया और प्रथम अपील न्यायालय ने भी अपने निर्णय के पैरा 5 में स्पष्ट रूप से वादी का यह आधार अभिलिखित किया है कि विचारण न्यायालय ने स्थायी व्यादेश मंजूर किए जाने के प्रश्न पर विचार नहीं किया है और एक पैरा में ही गूढ़ आदेश पारित करते हुए अपील खारिज कर दी और विवाद्यक पर विचार करने संबंधी प्रथम अपील न्यायालय के रूप में अपनी जिम्मेदारी नहीं निभाई ।

11. **संतोष हजारी** बनाम **पुरुषोत्तम तिवारी (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रथम अपील पक्षकारों का एक महत्वपूर्ण अधिकार है जब तक कि विधि द्वारा प्रतिषिद्ध न कर दिया जाए, संपूर्ण मामला तथ्य और विधि अर्थात् दोनों तरह के प्रश्नों पर पुन: सुनवाई किए जाने के लिए प्रस्तुत है । अत:, अपील न्यायालय के निर्णय से यह दर्शित होना चाहिए कि अपील न्यायालय ने भानपूर्ण रूप से विवेक का प्रयोग किया गया है और निकाले गए निष्कर्ष तर्कसम्मत हैं और यह कि पक्षकारों द्वारा सभी विवाद्यकों पर दलीलें दी गई हैं । वर्तमान मामले में प्रथम अपील न्यायालय अपने कर्तव्य का निर्वहन करने में असफल रहा है जैसाकि **संतोष हजारी** (उपरोक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है । प्रथम अपील न्यायालय अपनी जिम्मेदारी और कर्तव्य से बच नहीं सकता ।

12. वादी ने वाद में स्पष्ट रूप से यह अभिवाक् किया है कि सुखाचार के अधिकार से संबंधित घोषणा की डिक्री के साथ स्थायी व्यादेश भी वादी के पक्ष में मंजूर किया जाना चाहिए और प्रतिवादी सं. 1 द्वारा पैदा की गई बाधा को हटाए जाने का निदेश दिया जाना चाहिए । निस्संदेह, सिविल मामलों में विवाद्यकों का विरचित किया जाना एक महत्वपूर्ण प्रक्रम है और न्यायालय का यह कर्तव्य है कि विवाद्यक विरचित करते समय पीठासीन न्यायाधीश द्वारा कड़ी सावधानी और

---

[1] (2001) 3 एस. सी. सी. 179 = ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 965.

सतर्कता बरतनी चाहिए । (**रामेश्वरी देवी और अन्य** बनाम **निर्मला देवी और अन्य**[1] वाला मामला देखिए) । तथापि, विवाद्यक विरचित न कराना ऐसी स्थिति में महत्वपूर्ण नहीं है जब पक्षकार एक-दूसरे के पक्षकथन से अवगत हों और यह कि वह विवाद्यक संबंधित मामले में विद्यमान हो और साक्ष्य बिना किसी आपत्ति के अभिलिखित किया गया हो । (**श्री गंगई विनयगार टेम्पल और एक अन्य** बनाम **मीनाक्षी अम्मल और अन्य**[2] वाला मामला देखिए) ।

13. वर्तमान मामले में पारिणामिक अनुतोष स्थायी व्यादेश था जिसका दावा वादी ने किया था और इस प्रकार यदि विवाद्यक विरचित नहीं किया गया है और तब भी व्यादेश के पारिणामिक अनुतोष के प्रश्न पर विचार किया जा सकता है विशेषकर ऐसी स्थिति में जब पक्षकार तथ्यों और विवादित बिन्दुओं से अवगत होकर विचारण प्रक्रिया में भाग लेते हैं ।

14. उच्चतम न्यायालय ने **नागूबाई अम्मल और अन्य** बनाम **बी. शामा राव और अन्य**[3] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि समुचित विवाद्यक विरचित न किए जाने और अभिवाकों के अभाव से विचारण प्रक्रिया दूषित नहीं होगी ।

15. वर्तमान मामले के तथ्यों पर ऊपर कथित विधिक स्थिति के आलोक में विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि विचारण द्वारा निकाला गया यह निष्कर्ष कि ग्राम मंगला में स्थित 306 वर्ग फुट वाला भूखंड, जो खसरा सं. 1395/31 और 1095/13 का भाग है, वह भूमि है जिस पर वादी और प्रतिवादी सं. 1 का संयुक्त रूप से निस्तार अधिकार है । इस निष्कर्ष को इस न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी सं. 1 द्वारा प्रथम अपील/प्रति-आक्षेप के माध्यम से चुनौती नहीं दी गई है, इस प्रकार इस निष्कर्ष को अंतिम माना जाएगा । न तो विचारण न्यायालय ने और न ही प्रथम अपील न्यायालय ने वादी द्वारा दावा किए जाने पर भी

---

[1] (2011) 8 एस. सी. सी. 249 = (2011) 4 ए. आई. आर. झारखंड आर. 522.

[2] (2015) 3 एस. सी. सी. 624 = ए. आई. आर. ऑनलाइन 2014 एस. सी. 174.

[3] ए. आई. आर. 1956 एस. सी. 593.

स्थायी व्यादेश मंजूर किए जाने के मुद्दे पर विचार किया है और अपील में इस मुद्दे को उठाया गया है किंतु यह सुस्थापित तथ्य है कि वादी को इस घोषणा की डिक्री प्राप्त करने का हकदार पाया गया है कि उसे उक्त भूखंड पर सुखाचार का अधिकार प्राप्त है किंतु अपीलार्थी/वादी के पक्ष में स्थायी रूप से यह व्यादेश पारित नहीं किया गया है कि प्रतिवादी सं. 1 उक्त भूखंड से बाधा हटाए ।

16. जब एक बार वादी को डिक्री के लिए हकदार अभिनिर्धारित कर दिया गया है कि वह वादगत भूमि पर सुखाचार के अधिकार का हकदार है, तब इस आदेश का लाभ पाने के लिए वादी के पक्ष में पारिणामिक अनुतोष के रूप में स्थायी व्यादेश भी पारित किया जाना चाहिए था, यदि ऐसा नहीं किया जाता है तब वादी को नए सिरे से स्थायी व्यादेश का वाद फाइल करने के लिए विवश होना पड़ेगा । विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम, 1963" कहा गया है) की धारा 38(3)(घ) निम्न प्रकार है :–

> "**धारा 38. चिरस्थायी व्यादेश तब मंजूर की जाएगी** – (1) ***** और
>
> (2) *****
>
> (3) जब प्रतिवादी आक्रमण करता है या वादी के संपत्ति के अधिकार, या संपत्ति के आंनद पर हमला करने की धमकी देता है, तो न्यायालय निम्नलिखित मामलों चिरस्थायी व्यादेश दे सकता है, अर्थात् –
>
> (क) से (ग) *****
>
> (घ) जहां न्यायिक कार्यवाहियों की बहुलता को रोकने के लिए व्यादेश आवश्यक है ।"

इस प्रकार अधिनियम, 1963 की धारा 38 की उपधारा (3) के खंड (घ) के अन्तर्गत ऐसे मामले आते हैं जिनमें जब तक व्यादेश मंजूर न कर दिया जाए तब तक वादी अपने अधिकारों को सिद्ध करने या उनका

सुरक्षोपाय करने या वादी के भूमि अर्जन अधिकारों को प्रतिवादी द्वारा रोके जाने के विरुद्ध वाद फाइल करता रहेगा ।

17. **मोहम्मद हुसैन रमजान हुसैन** बनाम **अध्यक्ष, मंडी समिति**[1] वाले मामले में मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि जिस आधार पर व्यादेश जारी किया गया है उसका उद्देश्य भविष्य में होने वाली रिष्टी न्यायिक कार्यवाही की बहुलता को रोकना है ।

18. **सरबलाल झा** (उपरोक्त) वाले मामले में पटना उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि वादी अपने विधिक सुखाचार अधिकार और बाधा के तथ्य को सिद्ध करते हुए पर्याप्त नुकसान के सबूत के बिना भी स्थायी व्यादेश पाने का हकदार है ताकि कार्यवाहियों की बहुलता से बचा जा सके और इस संबंध में न्यायालय ने निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

> "9. सुखाचार से संबंधित अंग्रेजी सामान्य विधि के सिद्धांतों के अनुसार, जो न्यायिक निर्णयों द्वारा देश के इस भाग पर लागू किए गए हैं, मेरी राय में, निचले न्यायालयों ने व्यादेश के लिए अनुतोष देने में त्रुटि नहीं की है । इंपीरियल गैस लाइट एंड कोक कंपनी **बनाम** ब्रॉडबेंट [(1859) 7 एच. एल. सी. 600 (612)] वाले मामले में, जो इस विषय पर एक प्रमुख मामला है, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि वादी सामान्य विधि अधिकार के उल्लंघन के संबंध में व्यादेश के लिए आवेदन करता है और उस अधिकार तथा उसके तथ्य के अस्तित्व से इनकार किया जाता है तब उसे विधि में अपना अधिकार सिद्ध करना चाहिए, किंतु ऐसा करने के बाद, वह विशेष परिस्थितियों के सिवाय, उस उल्लंघन की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए व्यादेश के अधिकार का हकदार होगा । वर्तमान मामले में, वादी ने, निचले न्यायालय के निष्कर्षों के अनुसार, सुखाचार के अपने विधिक अधिकार और इसकी बाधा के

[1] ए. आई. आर. 1957 एम. पी. 8.

तथ्य को सिद्ध किया है । उन्होंने यह भी अभिकथन किया है कि प्रतिवादी, अर्थात् हमारे समक्ष अपीलार्थी, फिर से सुखाचार को भंग करने की धमकी दे रहे हैं । प्रतिवादी-अपीलार्थी का कहना यह नहीं है कि वे भविष्य में वादी-प्रत्यर्थियों के अधिकारों का हनन नहीं करेंगे ; बल्कि उनका यह दावा है कि उन्हें वादियों द्वारा भोगे जा रहे सुखाचार को भंग करने का अधिकार है । निचले न्यायालय के निष्कर्षों के अनुसार प्रतिवादियों को ऐसा कोई अधिकार नहीं है । इन परिस्थितियों में, मेरा यह मत है कि वादी-प्रतिवादियों ने अपने सुखाचार के विधिक अधिकार को सिद्ध कर दिया है और वे निश्चित रूप से बाधा की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए व्यादेश के हकदार हैं। भले ही प्रतिवादियों-अपीलार्थी द्वारा वादी के सुखाचार के विधिक अधिकार में भविष्य में बाधा डालने का खतरा है, तब ऐसी स्थिति में यदि व्यादेश के लिए प्रार्थना इस आधार पर अस्वीकार कर दी जाती है कि अतीत में वास्तविक बाधा से नुकसान पर्याप्त नहीं था तो परिणाम यह होगा कि जब प्रतिवादी-अपीलार्थी अपनी इस अवैध धमकी से वास्तविक उत्पन्न होगी तो वादी-प्रतिवादी एक ओर वाद फाइल करने के लिए मजबूर होंगे । इस प्रतिपादना के बारे में दो मत नहीं हो सकते हैं कि न्यायिक कार्यवाहियों की बहुलता से बचने के लिए विधि और न्याय के प्रत्येक न्यायालय द्वारा प्रयास किया जाना चाहिए और वास्तव में यही सिद्धांत है जो विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 38(3)(घ) में चिरस्थायी व्यादेश के अनुतोष से संबंधित है । उपरोक्त कारणों से, मेरा यह विचार है कि निचले न्यायालय ने वादी-प्रत्यर्थियों को व्यादेश का अनुतोष देने में विधि की कोई त्रुटि नहीं की है और श्री सरकार अन्य की द्वितीय दलील में भी कोई बल नहीं है ।

19. उपरोक्त निर्णयों में अधिकथित विधि के सिद्धांत का अनुसरण करते हुए वर्तमान मामले के तथ्यों पर पुन: विचार करने और अधिनियम, 1963 की धारा 38(3)(घ) में अन्तर्वलित प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि अपीलार्थी/वादी ने वाद

भूमि पर सुखाचार अधिकार सिद्ध कर दिया है जिसके संबंध में निचले दोनों न्यायालयों द्वारा यह अभिनिर्धारित किया जा चुका है कि वादी स्थायी व्यादेश के पारिणामिक अनुतोष का हकदार है और प्रतिवादी सं. 1 को उक्त भूमि में हस्तक्षेप किए जाने से रोका जाए, अन्यथा न्यायिक कार्यवाहियों को बढ़ावा मिलेगा और यह अधिनियम, 1963 की धारा 38(3)(घ) में अन्तर्विष्ट उपबंधों के प्रतिकूल होगा और वादी के पक्ष में निचले दोनों न्यायालयों द्वारा सुखाचार अधिकार की घोषणा किए जाने से वादी को कोई लाभ नहीं होगा ।

20. तद्नुसार, द्वितीय अपील भागत: मंजूर की जाती है और यह निदेश देते हुए डिक्री पारित की जाती है कि वादी भी प्रश्नगत भूमि अर्थात् 6 × 49 वर्ग फुट वाले भूखंड से निस्तार अधिकारों के लिए बाधा/अवैध निर्माण को 30 दिनों के भीतर प्रतिवादी सं. 1 को स्वयं या उसके अभिकर्ता को हटाना पड़ेगा जिसका उल्लेख वादपत्र के साथ संलग्न अनुसूची "ए", जो वादपत्र का भाग है, में किया गया है और प्रतिवादी सं. 1, उक्त भूखंड/मार्ग में वादी द्वारा अपने निस्तार अधिकारों का प्रयोग किए जाने में कोई बाधा/रुकावट पैदा नहीं करेगा । तद्नुसार विधि के सारभूत प्रश्नों का उत्तर दिया जाता है । पक्षकार अपने-अपने खर्चे स्वयं वहन करेंगे ।

21. तद्नुसार अपीली डिक्री पारित की जाती है ।

अपील मंजूर की गई ।

मही./अस.

संजय अंबस्थव

बनाम

छत्तीसगढ़ राज्य और अन्य

(2021 की सिविल रिट याचिका सं. 2653)

तारीख 2 जुलाई, 2021

न्यायमूर्ति गौतम बधूरी

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 21 – चिकित्सीय उपेक्षा – सरकारी अस्पताल के चिकित्सक द्वारा कोविड-19 के उपचार के दौरान गलत इंजेक्शन दिए जाने का आरोप – कोविड-19 के उपचार के लिए किसी भी औषधि का आविष्कार नहीं हुआ है और चिकित्सकों ने अपनी सर्वोत्तम क्षमता और ज्ञान के अनुसार इस रोग से पीड़ित रोगियों पर विभिन्न प्रकार के इंजेक्शनों का प्रयोग किया है और प्रत्येक अग्रिम तकनीक और अनुभव को बिना जोखिम उठाए प्राप्त नहीं किया जा सकता, अतः चिकित्सकों को याची की माता के उपचार में आई किसी भी प्रकार की उपेक्षा के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता ।

इस मामले में यह अभिवाक् किया गया है कि याची की माता को जिनकी आयु 69 वर्ष है, तारीख 22 सितंबर, 2020 को राम कृष्ण केयर मेडिकल साइंस प्रा. लि. में पीलिया के संक्रमण की शिकायत के साथ भर्ती किया गया था और उन्हें कोविड-19 के कोई भी लक्षण नहीं थे । उसके बाद भर्ती करते समय जब वह कोविड संक्रमित पाई गई तो उसे कोविड वार्ड में भर्ती करा दिया गया । यह कथन किया गया है कि उनकी माता को रेमडेसिविर इंजेक्शन दिया गया था और इंजेक्शन देने के गलत उपचार के कारण उसका स्वास्थ्य तारीख 26 सितंबर, 2020 से बिगड़ने लगा । तत्पश्चात् उसका और स्वास्थ्य खराब होने के कारण रेमडेसिविर इंजेक्शन देना रोक दिया गया था । इसके अतिरिक्त, तारीख 29 सितंबर, 2020 को आर.टी.पी.सी.आर. परीक्षण संचालित किया गया जिसमें वह कोविड असंक्रमित पाई गई लेकिन फिर भी उन्हें कोविड

रोगियों के साथ रखा गया और तारीख 2 अक्तूबर, 2020 को याची की माता की मृत्यु कोविड के बाद की जटिलता से हो गई । इसके अतिरिक्त, यह कथन किया गया है कि शव को बिना किसी सुरक्षा मानदंडों का पालन किए बिना याची को उसकी माता का शव दे दिया गया और इसका परिवहन भी एम्बुलेंस द्वारा बिना किसी सुरक्षोपाय के किया गया । परिणामस्वरूप, चिकित्सालय (प्रत्यर्थी सं. 5) द्वारा केंद्रीय और राज्य सरकार की ओर से जारी दिशानिर्देश का उल्लंघन किया गया जिसके लिए वे अभियोजन के लिए दायी हैं । ऐसे अभिवचन के साथ दोहरी प्रार्थना की गई है । चिकित्सालय ने उपेक्षापूर्ण उपचार तथा शव के स्थानांतरण संबंधी कोविड मानकों का पालन भी नहीं किया गया था, इसलिए चिकित्सालय अभियोजन के लिए दायी हैं । याची के विद्वान् काउंसेल ने दलील दी है कि जब याची की माता को भर्ती किया गया था तो वह कोविड-19 से संक्रमित पाई गई थी और यद्यपि वह कोविड से पुन: निरोग हो गई थी किन्तु इसके पश्चात् तारीख 2 अक्तूबर, 2020 को उसकी मृत्यु हो गई । मृत्यु की तारीख से पूर्व रोगी का कोविड के लिए आर.टी.पी.सी.आर. परीक्षण कराया गया और यह पाया गया कि वह कोविड-19 से संक्रमित नहीं है, इस प्रकार वह पुन: निरोग हो गई थी किन्तु तत्पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई । यह कथन किया गया है कि यद्यपि याची की माता की मृत्यु कोविड की जटिलता के कारण हुई थी मगर मृत्यु के पश्चात् भारत सरकार के स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के दिशानिर्देशों (प्रदर्श-6) का पालन किए बिना ही शव (परिजनों) को सौंप दिया गया था । उन्होंने यह दलील दी कि दिशानिर्देशों के अनुसार, चिकित्सालय से यह अपेक्षित था कि वह शव को रिसन रहित दोहरी परत वाले जिपयुक्त थैला में करके परिवहन कर्मचारी को दिया जाना था । जबकि, याची की माता के मामले में याची को इस सावधानी के बिना ही शव दे दिया गया था और याची अंबिकापुर ले गया और वहीं पर उसका दाह संस्कार किया । परिणामस्वरूप, उन दिशानिर्देशों का पालन नहीं किया गया जो महामारी अधिनियम के अधीन जारी किए गए थे । याची के काउंसेल ने इसके अतिरिक्त यह दलील दी है कि स्वास्थ्य सेवाओं के निदेशक को इन घटनाओं की शिकायत करते हुए आवेदन फाइल किए गए थे जिनमें अभिकथन तो

किए गए किन्तु उन पर ध्यान नहीं दिया गया । इसलिए, यह याचिका चिकित्सालय के विरुद्ध दांडिक कार्यवाही किए जाने के लिए प्रस्तुत की गई है । याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – याची का प्राथमिक अभिकथन यह है कि गलत इंजेक्शन और उपचार करने में उपेक्षा की गई है अर्थात् याची की माता को रेमडेसिविर इंजेक्शन दिया गया था जिससे उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया था । और दांडिक मामले के संबंध में किन परिस्थितियों के अधीन चिकित्सीय उपेक्षा करते हुए रेमडेसिविर इंजेक्शन दिया जाना आवश्यक था या नहीं, इसका परीक्षण न्यायालय द्वारा नहीं किया जा सकता । इस तथ्य की अनदेखी नहीं की जा सकती है कि भारत विश्व में द्वितीय स्थान पर सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश है । इसके विकासशील होने, बढ़ते हुए शहरीकरण, द्रुत वनोन्मूलन, जनसंख्या के स्तर में कोई भी कमी या रोकथाम न होने से लोगों को उष्णकटिबन्धीय रोगों और सघन जनसंख्या के अधिक उन्मुख बना दिया है । इसलिए, प्राकृतिक रूप से देश में स्वास्थ्य की स्थिति सर्वोत्तम नहीं हो सकती है । नगरीय क्षेत्र में भी रोगियों की तुलना में चिकित्सकों का औसत कम है और इस कमी से महामारी पूरे विश्व में फैल गई है जिसे संभालना सामान्य और सरल नहीं है । आयुर्विज्ञान द्वारा किया गया कोई भी प्रयास बढ़ती हुई जनसंख्या और रोगियों के लिए पर्याप्त नहीं होगा बल्कि स्थिति और भयावह हो गई है विशेषकर कोविड के दौरान । महामारी 100 वर्षों के पश्चात् लौटी है, किसी भी औषधि का आविष्कार नहीं हुआ है और चिकित्सकों ने अपनी सर्वोत्तम क्षमता और ज्ञान के अनुसार कोविड-19 से ग्रसित रोगियों पर विभिन्न इंजेक्शनों का प्रयोग किया है । इस जोखिम को स्वीकार करना होगा तथा इस तथ्य को समझना होगा कि स्वास्थ्य तंत्र बिना जोखिम लिए लाभ नहीं दे सकता है और प्रत्येक अग्रिम तकनीक तथा अनुभव को भी बिना जोखिम उठाए नहीं पाया जा सकता है । चिकित्सकों को भी हमारी तरह, अनुभव से सीखना होता है और अनुभव से सीखना प्रायः कठिन होता है । इसलिए चिकित्सकों पर उपेक्षा के लिए ऐसी महामारी के समय दांडिक अभियोजन चलाना अत्यधिक भावनात्मक अव्यवस्था की ओर ले जाएगा जबकि महामारी के समय में चिकित्सकों ने रोगियों की सेवा इसके बावजूद भी की है कि

चिकित्सकों-रोगियों का अनुपात बुरी तरह से असफल है और चिकित्सकों ने रोगियों को निरोग करने के सर्वोत्तम प्रयास किए हैं, तब किसी की व्यक्तिगत राय पर उन्हें दांडिक उपेक्षा से संबद्ध नहीं किया जा सकता । इन परिस्थितियों में, हमें तंत्र में विश्वास करना होगा तथा शर्तों के दुष्प्रयोग को अनुज्ञात नहीं किया जा सकता चाहे वे शर्तें हो सकती हैं चाहे वह शर्तें स्वयं प्रमाणित रूप से सद्भभावपूर्ण क्यों न हो । शिकायत के द्वितीय पहलू के संबंध में कि केन्द्रीय और राज्य सरकार द्वारा जारी किए गए प्रोटोकॉल के दिशानिर्देशों के अनुसार शव सौंपा नहीं गया था, यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन शक्तियों का प्रयोग, चलती हुई जांच में नहीं कर सकता; क्योंकि यह शिकायत कि शव जिपयुक्त थैले के बिना ही दिया गया था, जांच का विषय है । इसलिए, यह न्यायालय स्वयं को अन्वेषण से अलग रखता है । कुछ समस्याओं की पूर्ति बहु आयामी दृष्टिकोण से होती है और वे दिखाई देती रहेंगी यदि उन पर बारीकी से विचार किया जाए और इसीलिए याची तथ्यों और अभिकथनों को सिद्ध करने के लिए इस न्यायालय को गलत तरीका अपनाने के लिए विवश नहीं कर सकता । (पैरा 5, 8 और 9)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2005] (2005) 6 एस. सी. सी. 1 = ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 3180 : **जैकब मैथ्यू** बनाम **पंजाब राज्य और एक अन्य** ; 7

[2004] ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 409 : **डा. सुरेश गुप्ता** बनाम **राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली सरकार और एक अन्य** । 6

अपीली सिविल अधिकारिता : 2021 की सिविल रिट याचिका सं. 2653.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री शक्ति राज सिन्हा

प्रत्यर्थी की ओर से श्री आलोक बक्शी, अपर महाधिवक्ता

आदेश

सुनवाई की गई । यह अभिवाक् किया गया है कि याची की माता को जिनकी आयु 69 वर्ष है, तारीख 22 सितंबर, 2020 को राम कृष्ण केयर मेडिकल साइंस प्रा. लि. में पीलिया के संक्रमण की शिकायत के साथ भर्ती किया गया था और उन्हें कोविड-19 के कोई भी लक्षण नहीं थे । उसके बाद भर्ती करते समय जब वह कोविड संक्रमित पाई गई तो उसे कोविड वार्ड में भर्ती करा दिया गया । यह कथन किया गया है कि उनकी माता को रेमडेसिविर इंजेक्शन दिया गया था । इंजेक्शन देने के गलत उपचार के कारण उसका स्वास्थ्य तारीख 26 सितंबर, 2020 से बिगड़ने लगा । तत्पश्चात् उसका और स्वास्थ्य खराब होने के कारण रेमडेसिविर इंजेक्शन देना रोक दिया गया था । इसके अतिरिक्त, तारीख 29 सितंबर, 2020 को आर.टी.पी.सी.आर. परीक्षण संचालित किया गया जिसमें वह कोविड असंक्रमित पाई गई लेकिन फिर भी उन्हें कोविड रोगियों के साथ रखा गया और तारीख 2 अक्तूबर, 2020 को याची की माता की मृत्यु कोविड के बाद की जटिलता से हो गई । इसके अतिरिक्त, यह कथन किया गया है कि शव को बिना किसी सुरक्षा मानदंडों का पालन किए बिना याची को उसकी माता का शव दे दिया गया और इसका परिवहन भी एम्बुलेंस द्वारा बिना किसी सुरक्षोपाय के किया गया । परिणामस्वरूप, चिकित्सालय (प्रत्यर्थी सं. 5) द्वारा केंद्रीय और राज्य सरकार की ओर से जारी दिशानिर्देश का उल्लंघन किया गया जिसके लिए वे अभियोजन के लिए दायी हैं । ऐसे अभिवचन के साथ दोहरी प्रार्थना की गई है । चिकित्सालय ने उपेक्षापूर्ण उपचार तथा शव के स्थानांतरण संबंधी कोविड मानकों का पालन भी नहीं किया गया था, इसलिए चिकित्सालय अभियोजन के लिए दायी हैं ।

2. याची के विद्वान् काउंसेल ने दलील दी है कि जब याची की माता को भर्ती किया गया था तो वह कोविड-19 से संक्रमित पाई गई थी और यद्यपि वह कोविड से पुन: निरोग हो गई थी किन्तु इसके पश्चात् तारीख 2 अक्तूबर, 2020 को उसकी मृत्यु हो गई । मृत्यु की तारीख से पूर्व रोगी का कोविड के लिए आर.टी.पी.सी.आर. परीक्षण कराया गया और यह पाया गया कि वह कोविड-19 से संक्रमित नहीं है, इस प्रकार वह पुन: निरोग हो गई थी किन्तु तत्पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई । यह

कथन किया गया है कि यद्यपि याची की माता की मृत्यु कोविड की जटिलता के कारण हुई थी मगर मृत्यु के पश्चात् भारत सरकार के स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के दिशानिर्देशों (प्रदर्श-6) का पालन किए बिना ही शव (परिजनों) को सौंप दिया गया था । उन्होंने यह दलील दी कि दिशानिर्देशों के अनुसार, चिकित्सालय से यह अपेक्षित था कि वह शव को रिसन रहित दोहरी परत वाले जिपयुक्त थैला में करके परिवहन कर्मचारी को दिया जाना था । जबकि, याची की माता के मामले में याची को इस सावधानी के बिना ही शव दे दिया गया था और याची अंबिकापुर ले गया और वहीं पर उसका दाह संस्कार किया । परिणामस्वरूप, उन दिशानिर्देशों का पालन नहीं किया गया जो महामारी अधिनियम के अधीन जारी किए गए थे । याची के काउंसेल ने इसके अतिरिक्त यह दलील दी है कि स्वास्थ्य सेवाओं के निदेशक को इन घटनाओं की शिकायत करते हुए आवेदन फाइल किए गए थे जिनमें अभिकथन तो किए गए किन्तु उन पर ध्यान नहीं दिया गया । इसलिए, यह याचिका चिकित्सालय के विरुद्ध दांडिक कार्यवाही किए जाने के लिए प्रस्तुत की गई है ।

3. राज्य के विद्वान् काउंसेल ने याची के काउंसेल द्वारा दिए गए तर्क का विरोध किया है ।

4. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना है, अभिवाकों और संलग्न दस्तावेजों का परिशीलन किया है ।

5. याची का प्राथमिक अभिकथन यह है कि गलत इंजेक्शन और उपचार करने में उपेक्षा की गई है अर्थात् याची की माता को रेमडेसिविर इंजेक्शन दिया गया था जिससे उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया था । दांडिक मामले के संबंध में किन परिस्थितियों के अधीन चिकित्सीय उपेक्षा करते हुए रेमडेसिविर इंजेक्शन दिया जाना आवश्यक था या नहीं, इसका परीक्षण न्यायालय द्वारा नहीं किया जा सकता ।

6. उच्चतम न्यायालय ने **डा. सुरेश गुप्ता** बनाम **राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली सरकार और एक अन्य**[1] वाले मामले में यह

[1] ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 409.

अभिनिर्धारित किया है कि सद्भावपूर्ण चिकित्सीय व्यवसायी को अनावश्यक रूप से तंग नहीं करना चाहिए । न्यायालय ने पाया कि चिकित्सक (हमारा) जीवन को बचाने के लिए उपलब्ध नहीं रहेंगे यदि उन्हें दांडिक अभियोजन का सामना किए जाने से डराया जाएगा । ऐसी दशा में, चिकित्सीय व्यवसायी जहां सफलता की संभावना 10 प्रतिशत हो वहां उस बीमार रोगी को बचाने के लिए अंतिम प्रयास करने का जोखिम उठाने के बजाय उस रोगी को आपात स्थिति में उसी के भाग्य पर छोड़ सकता है जो अंतिम सांसें गिन रहा है कि कहीं उसका प्रयास असफल रहता है तो उसे दांडिक अभियोजन का सामना करना पड़ सकता है । न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि साधारण देख-रेख में कमी, निर्णय लेने की त्रुटि या दुर्घटना से चिकित्सीय व्यवसायी की उपेक्षा नहीं होती है, और विशेष तथा असाधारण सावधानी, जिससे किसी विशिष्ट घटना को रोका जा सके, का प्रयोग करने में असफल रहना अभिकथित चिकित्सीय उपेक्षा को आंकने का मानक नहीं हो सकता ।

7. उच्चतम न्यायालय ने **जैकब मैथ्यू** बनाम **पंजाब राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में कुछ दिशानिर्देशों को अधिकथित किया है । इस निर्णय के पैरा 48 में संक्षेप में जो संगणना की गई है उसे नीचे उद्धृत किया गया है :–

> "48. हम अपने निष्कर्षों को संक्षेप में निम्नानुसार प्रस्तुत करते हैं –
>
> (1) उपेक्षा कोई कार्य करने का लोप कारित करके किसी कर्तव्य का भंग है जो कोई युक्तियुक्त व्यक्ति उन बातों से मार्गदर्शित होकर जो आमतौर पर मानवीय कार्यों का संचालन विनियमित करती हैं, कार्य करता है या कोई ऐसा कार्य करके जो एक प्रज्ञावान और युक्तियुक्त व्यक्ति नहीं करेगा । अपकृत्य विधि में दी गई "उपेक्षा" की परिभाषा जिसे इसमें इसके ऊपर निर्दिष्ट किया गया है, रतनलाल और धीरजलाल द्वारा लिखित पुस्तक (जिसका संपादन न्यायमूर्ति जी. पी. सिंह द्वारा किया गया है) से ली गई है, जो ठीक है । उपेक्षा

[1] (2005) 6 एस. सी. सी. 1 = ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 3180.

उस क्षति के कारण संज्ञेय बन जाती है जो उस व्यक्ति के कृत्य या लोप के परिणाम स्वरूप हुई जिसके विरुद्ध वाद फाइल किया गया है । उपेक्षा के आवश्यक संघटक तीन हैं – 'कर्तव्य', 'भंग' और 'परिणामी नुकसान' ।

(2) चिकित्सीय व्यवसाय के संदर्भ में "उपेक्षा" तब मानी जाएगी जब उपचार मानक से भिन्न तरीके से किया जाए । किसी व्यवसायी, विशेष रूप से चिकित्सक, पर उतावलेपन या उपेक्षा साबित करने के लिए अतिरिक्त मानक भी लागू होती हैं । उपजीविकाजन्य उपेक्षा का मामला व्यवसायी उपेक्षा से भिन्न होता है । साधारण देख-रेख में कमी, निर्णय लेने की त्रुटि या दुर्घटना से चिकित्सीय व्यवसायी के प्रति उपेक्षा साबित नहीं होती है । जब तक एक चिकित्सक उस काल में चिकित्सा व्यवसाय में स्वीकार्य पद्धति का पालन करता है, तो उसे उपेक्षा के लिए मात्र इसलिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है कि वहां एक बेहतर अनुकल्पी कार्यप्रणाली या उपचार की रीति उपलब्ध थी या सिर्फ इसलिए कि अधिक कुशल चिकित्सक ने उस पद्धति या प्रक्रिया का पालन नहीं किया था जिसे अभियुक्त चिकित्सक ने अपनाया था । जब पूर्वोपायों को करने में चूक की बात आती है, तब यह देखना चाहिए कि क्या उन पूर्वोपायों को किया गया था जो एक साधारण अनुभव के व्यक्ति को पर्याप्त लगता है, तथा ऐसे असाधारण और विशिष्ट पूर्वोपाय का प्रयोग न करना जिससे एक विशिष्ट घटना घटित होने से रोकी जा सकती थी, वह अभिकथित उपेक्षा को आंकने का मानक नहीं हो सकता । निर्धारण करते समय देख-रेख के मानक का आंकलन घटना के समय पर उपलब्ध ज्ञान को ध्यान में रखते हुए करना चाहिए न कि विचारण की तारीख को ध्यान में रखते हुए । ऐसे ही, जब उपेक्षा का आरोप इस आधार पर लगाया जाता है कि किसी विशिष्ट उपकरण का प्रयोग नहीं किया गया था तब आरोप असफल हो जाएगा यदि उपकरण साधारणतया घटना के समय जहां इसका प्रयोग किया जाना है, उपलब्ध न हो ।

(3) से (4) **** **** ****

(5) सिविल और दांडिक विधि में विधि शास्त्र में उपेक्षा की धारणा में मतभेद हैं । यह आवश्यक नहीं है कि जो कार्य सिविल विधि में उपेक्षा हो वह कार्य दांडिक विधि में भी उपेक्षा कहलाए । उपेक्षा को अपराध की कोटि में लाने के लिए, आपराधिक मन:स्थिति के अवयवों का विद्यमान होना आवश्यक है । किसी कार्य को दांडिक उपेक्षा की कोटि में लाने के लिए उपेक्षा की मात्रा अत्यधिक अर्थात् घोर या बहुत अधिक होनी चाहिए । उपेक्षा जो न तो घोर है और न ही उच्चतर मात्रा की है, वह सिविल विधि में कार्रवाई करने के आधार का आधार बन सकती है, लेकिन वह अभियोजन किए जाने के लिए पर्याप्त नहीं है ।

(6) से (8) **** **** ****

8. इस तथ्य की अनदेखी नहीं की जा सकती है कि भारत विश्व में द्वितीय स्थान पर सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश है । इसके विकासशील होने, बढ़ते हुए शहरीकरण, द्रुत वनोन्मूलन, जनसंख्या के स्तर में कोई भी कमी या रोकथाम न होने से लोगों को उष्णकटिबन्धीय रोगों और सघन जनसंख्या के अधिक उन्मुख बना दिया है । इसलिए, प्राकृतिक रूप से देश में स्वास्थ्य की स्थिति सर्वोत्तम नहीं हो सकती है । नगरीय क्षेत्र में भी रोगियों की तुलना में चिकित्सकों का औसत कम है और इस कमी से महामारी पूरे विश्व में फैल गई है जिसे संभालना सामान्य और सरल नहीं है । आयुर्विज्ञान द्वारा किया गया कोई भी प्रयास बढती हुई जनसंख्या और रोगियों के लिए पर्याप्त नहीं होगा बल्कि स्थिति और भयावह हो गई है विशेषकर कोविड के दौरान । महामारी 100 वर्षों के पश्चात् लौटी है, किसी भी औषधि का आविष्कार नहीं हुआ है और चिकित्सकों ने अपनी सर्वोत्तम क्षमता और ज्ञान के अनुसार कोविड-19 से ग्रसित रोगियों पर विभिन्न इंजेक्शनों का प्रयोग किया है । इस जोखिम को स्वीकार करना होगा तथा इस तथ्य को समझना होगा कि स्वास्थ्य तंत्र बिना जोखिम लिए लाभ नहीं दे सकता है और प्रत्येक अग्रिम तकनीक तथा अनुभव को भी बिना जोखिम उठाए

नहीं पाया जा सकता है । चिकित्सकों को भी हमारी तरह, अनुभव से सीखना होता है और अनुभव से सीखना प्रायः कठिन होता है । इसलिए चिकित्सकों पर उपेक्षा के लिए ऐसी महामारी के समय दांडिक अभियोजन चलाना अत्यधिक भावनात्मक अव्यवस्था की ओर ले जाएगा जबकि महामारी के समय में चिकित्सकों ने रोगियों की सेवा इसके बावजूद भी की है कि चिकित्सकों-रोगियों का अनुपात बुरी तरह से असफल है और चिकित्सकों ने रोगियों को निरोग करने के सर्वोत्तम प्रयास किए हैं, तब किसी की व्यक्तिगत राय पर उन्हें दांडिक उपेक्षा से संबद्ध नहीं की जा सकता । इन परिस्थितियों में, हमें तंत्र में विश्वास करना होगा तथा शर्तों के दुष्प्रयोग को अनुज्ञात नहीं किया जा सकता चाहे वे शर्तें हो सकती हैं चाहे वह शर्तें स्वयं प्रमाणित रूप से सद्भावपूर्ण क्यों न हो ।

9. शिकायत के द्वितीय पहलू के संबंध में कि केन्द्रीय और राज्य सरकार द्वारा जारी किए गए प्रोटोकॉल के दिशानिर्देशों के अनुसार शव सौंपा नहीं गया था, यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन शक्तियों का प्रयोग, चलती हुई जांच में नहीं कर सकता ; क्योंकि यह शिकायत कि शव जिपयुक्त थैले के बिना ही दिया गया था, जांच का विषय है । इसलिए, यह न्यायालय स्वयं को अन्वेषण से अलग रखता है । कुछ समस्याओं की पूर्ति बहु आयामी दृष्टिकोण से होती है और वे दिखाई देती रहेंगी यदि उन पर बारीकी से विचार किया जाए और इसीलिए याची तथ्यों और अभिकथनों को सिद्ध करने के लिए इस न्यायालय को गलत तरीका अपनाने के लिए विवश नहीं कर सकता ।

10. पूर्वोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, मैं इस याचिका को ग्रहण करने के लिए आनत नहीं हूं । तद्नुसार, इसे खारिज किया जाता हैं ।

याचिका खारिज की गई ।

अम./अस.

राजेन्द्र साहेबराव सानप

बनाम

लीना राजेन्द्र सानप

(2016 की कुटुंब न्यायालय दि्वतीय अपील सं. 11)

तारीख 21 जनवरी, 2021

न्यायमूर्ति ए. एस. चंदूरकर और न्यायमूर्ति एन. बी. सूर्यवंशी

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 13(1)(i-क)(iii) [सपठित कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19] – विवाह-विच्छेद – पत्नी द्वारा क्रूरता कारित किए जाने और उसकी मानसिक स्थिति ठीक न होने के आधार पर पति द्वारा विवाह-विच्छेद की अर्जी फाइल किया जाना – पति द्वारा अभिवाक् किया जाना कि पत्नी सिजौफ्रेनिया से पीड़ित थी – अभिलेख पर ऐसा कोई साक्ष्य नहीं पाया गया है कि जिससे यह साबित होता हो कि पत्नी सिजौफ्रेनिया से पीड़ित थी या उसका व्यवहार पति के प्रति क्रूरतापूर्ण था, अतः इस आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित नहीं की जा सकती और निचले न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

इस मामले में अपीलार्थी-पति ने हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13(1)(i-क)(iii) के अधीन 2009 की याचिका सं. ए-319 फाइल की, जिसमें अन्य बातों के साथ यह दलील दी है कि पत्नी लीना के साथ उसका विवाह तारीख 4 अप्रैल, 1997 को अमरावती में हिंदू संस्कार और रीति-रिवाज के अनुसार संपन्न हुआ था । विवाह के बाद उनके यहां दो पुत्रों अर्थात् राहुल (आयु 12 वर्ष) और देवाशीष (आयु 4 वर्ष और छह मास) का जन्म हुआ । विवाह का खर्च पति ने वहन किया । जब से पत्नी, पति के घर आई थी, तभी से उसका व्यवहार मनमाना था, वह झगड़ा करती थी, गालियां देती थी, घर का कामकाज नहीं करती थी और पति के कुटुंब के सदस्यों के साथ क्रूर व्यवहार करती थी, इसी कारण

पति और उसके कुटुंब के सदस्यों का मानसिक उत्पीड़न हो रहा था । पत्नी ने पति को मानसिक और शारीरिक सुख से वंचित कर दिया था । पति ने अपनी पत्नी के व्यवहार के बारे में उसके माता-पिता को सूचित किया और उस समय उसे उनसे पता चला कि विवाह के पूर्व से ही वह मनोवैज्ञानिक बीमारी से पीड़ित थी और कभी-कभी उसका मानसिक संतुलन भी बिगड़ जाता था । तथापि, इस तथ्य को पत्नी के माता-पिता ने उससे और उसके कुटुंब के सदस्यों से छिपाया था । पत्नी के माता-पिता ने पति को शांत रहने और विश्वास दिलाने का प्रत्यन किया । दोनों कुटुंब के सम्मानित सदस्यों ने पत्नी का उपचार कराने का निर्णय लिया । पति ने अपने वैवाहिक जीवन और बच्चों के भविष्य पर विचार करते हुए उक्त निर्णय स्वीकार कर लिया । पत्नी को माता-पिता के घर भेज दिया गया और डा. प्रमोद ठाकरे, मनोचिकित्सक, अकोला से उपचार कराया गया । तथापि, पत्नी के व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं आया, इसके विपरीत उसकी मानसिक बीमारी अत्यधिक बिगड़ गई । पत्नी अप्रासंगिक बातें करती थी, बाहर का कूड़ा घर में लाती थी, पति और बच्चों को खाना देने से मना करती थी और उनसे झगड़ा करती थी । इस प्रकार, पति उसे उपचार के लिए मनोचिकित्सक डा. श्रीकांत देशमुख को दिखाने ले गया । लेकिन उपचार के बावजूद पत्नी की सनक में बढ़ोतरी होती गई । वह डाक्टर द्वारा दी गई औषधियों को फेंक देती थी । उसने आगे कथन किया कि पत्नी के साथ रहना उसके लिए खतरनाक और कठिन हो गया क्योंकि वह शारीरिक और मानसिक रूप से उसके साथ सहवास करने में असमर्थ थी । इन सभी परिस्थितियों के कारण, पति ने पत्नी के छोटे भाई को अमरावती बुलाया और उसके साथ 'राखी पूर्णिमा' से पूर्व वर्ष 2009 के अगस्त मास में पत्नी अपने माता-पिता के घर पहुंच गई और तब से पत्नी अपने माता-पिता के घर ही रह रही थी । इन अभिवाकों के आधार पर, पति ने विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए अनुरोध किया । पत्नी न्यायालय में उपस्थित हुई और लिखित अभिकथन फाइल करते हुए पति के दावे का विरोध किया । विवाह और दो पुत्रों के जन्म के तथ्य को छोड़कर, उसने पति के सभी आरोपों से इनकार कर दिया । उसके अनुसार, पति दूसरा विवाह करना चाहता था । वह सदैव

उसके साथ अपशब्द, मारपीट करता था और उसके विरुद्ध भद्दी टिप्पणियां करता था । पति अपनी ड्यूटी से नशे की हालत में घर आया करता था और वह अपनी मां के उकसाने के कारण उसे निर्दयता से पीटा करता था । दो बार उसने उसका गला घोंटने का प्रत्यन किया । पिटाई के कारण उसके कान को क्षति पहुंची और उसे डाक्टर से उपचार कराना पड़ा । तब से उसे सुनने की समस्या उत्पन्न हो गई । तारीख 5 अगस्त, 2009 को "राखी पूर्णिमा" के समय, पति ने उसे निर्दयता से पीटा और उसकी गर्दन दबा दी, उस समय ससुर ने उसे पति से बचाया था । पति उसे बिना बताए झूठा बहाना बनाकर मनोचिकित्सक के पास ले जाता था और औषधि खाने के लिए मजबूर करता था । वह किसी भी बीमारी से पीड़ित नहीं थी और वह मानसिक और शारीरिक रूप से स्वस्थ थी । वह दो पुत्रों की मां थी और उनकी देखभाल ठीक से कर रही थी, तथापि, पति उससे छुटकारा पाने के लिए दूसरा विवाह करना चाहता था, इसलिए वह उसे मानसिक रोगी घोषित करने का प्रत्यन कर रहा था । उसने आगे दलील दी है कि छोटा पुत्र देवाशीष उसके साथ रह रहा था और वह उसकी उचित देखभाल कर रही थी । बड़ा पुत्र राहुल पति के साथ रह रहा था और पति राहुल को मां के प्यार से वंचित कर रहा था । उसने आगे यह कथन किया कि दोनों पुत्रों को माता और पिता अर्थात् दोनों के प्यार और स्नेह की आवश्यकता है, उनके भविष्य पर विचार करते हुए, वह पति के पास जाने के लिए तैयार थी । जब उसे अपने भाई के साथ माता-पिता के घर जाने के लिए मजबूर होना पड़ा, उस समय पति ने उससे कहा कि वह 15 दिनों के भीतर आकर उसे वापस ले जाएगा । इसलिए, उसने अनुरोध किया कि पति द्वारा फाइल की गई अपील को खारिज कर दिया जाए । पति ने अपनी याचिका की दलीलों को शब्दशः दोहराते हुए साक्ष्य के बदले में अपना शपथपत्र फाइल किया । उसने मामले के दस्तावेज, डा. श्रीकांत देशमुख और डा. प्रमोद ठाकरे के नुस्खे और औषधियों का एक बिल (प्रदर्श-31 से 34 के रूप में) अभिलेख पर प्रस्तुत किया । प्रतिपरीक्षा में, पति ने स्वीकृत किया कि उसकी पत्नी के साथ उसका विवाह एक-दूसरे को देखने के बाद तय हुआ था । उसके भाई का विवाह उसकी पत्नी की बहन के साथ हुआ था और

उनका विवाह भी "व्यवस्थित विवाह" था । उसने इस बात से इनकार किया कि उसके थप्पड़ मारने के कारण पत्नी के कान में क्षति पहुंची है । उसने स्वीकृत किया कि अधिकतर लोग मनोचिकित्सक से उपचार कराते हैं यदि उन्हें कोई मनोवैज्ञानिक समस्या हो । उसने यह भी माना कि छोटा पुत्र प्रत्यर्थी के साथ रहता था और बड़ा पुत्र पत्नी के साथ रहता था । उसने यह भी स्वीकार किया कि 5 अगस्त, 2009 को उसने पत्नी के भाई से उसे माता-पिता के घर ले जाने के लिए कहा था । पति के पिता अर्थात् साहेबराव की परीक्षा अपीलार्थी द्वारा अभि. सा. 2 के रूप में कराई थी । उसने साक्ष्य में दिए गए अपने शपथपत्र में पति की दलीलों की भी पुनरावृत्ति की है । प्रतिपरीक्षा में, उसने स्वीकृत किया कि उसके छोटे पुत्र का विवाह प्रत्यर्थी की सगी बहन के साथ हुआ था और वह विवाह पति और पत्नी के विवाह के आठ से दस मास बाद हुआ था । उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि पत्नी तारीख 5 अगस्त, 2009 से अपने माता-पिता के घर पर रह रही थी । उसने स्वीकार किया कि पति के परिजनों ने कभी भी पत्नी के व्यवहार के बारे में थाने में शिकायत दर्ज नहीं कराई । उसने इस बात से इनकार किया कि पत्नी किसी मानसिक बीमारी से पीड़ित नहीं थी । अपीलार्थी के छोटे भाई प्रमोद की पत्नी द्वारा अभि. सा. 3 के रूप में परीक्षा कराई गई । उसने अपने साक्ष्य में कथन किया कि पति उसका बड़ा भाई है । वह पिछले 12-13 वर्ष से पुलगांव में रह रहा था । उसने पत्नी की छोटी बहन नीटू से विवाह किया था । उनका विवाह एक प्रेम विवाह था जिसे रजिस्ट्रीकृत कराया गया था । उसने कथन किया कि विवाह के बाद से वह अमरावती में नहीं रह रहे थे, लेकिन वह अमरावती आते-जाते रहते थे । पत्नी ने अपने लिखित अभिकथन में अपनी दलीलों को दोहराते हुए अपना साक्ष्य-शपथपत्र फाइल किया । प्रतिपरीक्षा में उसने स्वीकृत किया कि उसने पति और उसके कुटुंब के सदस्यों द्वारा किए गए दुर्व्यवहार के बारे में कभी पुलिस थाने में शिकायत नहीं दी है । उसने यह स्वीकृत किया कि उसने मनोचिकित्सक डा. प्रमोद ठाकरे और डा. श्रीकांत देशमुख से उपचार कराया था । उसने इस बात से इनकार किया कि वह घर में बाहर का कूड़ा-कचरा लाती थी, वह खाना नहीं बनाती थी और उसका

पति के परिजनों के साथ झगड़ा होता था और कि वह मानसिक बीमारी से पीड़ित थी । उसने इस बात से इनकार किया कि चूंकि वह नियमित रूप से औषधि नहीं लेती थी, इसलिए उनकी मानसिक स्थिति खराब हो गई और इस प्रकार, उसे डा. देशमुख के पास ले जाया गया । विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों पर विचार करने के पश्चात्, पति द्वारा फाइल की गई अर्जी खारिज कर दी और उक्त निर्णय वर्तमान अपील में आक्षेपित है । अपील ख़ारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अपना पक्षकथन साबित करने के लिए अपीलार्थी ने मामले के दस्तावेज के रूप में औषधियों के नुस्खे और उनका एक बिल चिकित्सा दस्तावेज सहित प्रदर्श-31 से 34 तक अभिलेख पर प्रस्तुत किए हैं, तथापि, हमारे अनुसार वे अपीलार्थी के इस आरोप को साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं कि प्रत्यर्थी सिज़ोफ्रेनिया से पीड़ित थी । डा. श्रीकांत देशमुख के दस्तावेज (प्रदर्श-31) से कहीं भी यह दर्शित नहीं होता है कि प्रत्यर्थी सिज़ोफ्रेनिया से पीड़ित थी । अपीलार्थी के विद्वान् अधिवक्ता ने "फार्माको-थेरेपी" के कॉलम में "सिज़ो" शब्द को इंगित करते हुए यह दलील दी कि चिकित्सक का नैदानिक निदान यह है कि प्रत्यर्थी सिज़ोफ्रेनिया से पीड़ित थी किन्तु हम उससे सहमत होने में असमर्थ हैं । अपीलार्थी ही इस बात को बेहतर समझता होगा कि वह अपने मामले का समर्थन करने के लिए डा. श्रीकांत देशमुख और डा. प्रमोद ठाकरे की परीक्षा इस संबंध में कराने में विफल क्यों रहा कि प्रत्यर्थी सिज़ोफ्रेनिया से पीड़ित थी । प्रदर्श-32 से 34 के दस्तावेज़ से भी यह दर्शित नहीं होता है कि प्रत्यर्थी सिज़ोफ्रेनिया से पीड़ित थी । जब अपीलार्थी यह आरोप लगा रहा था कि प्रत्यर्थी सिज़ोफ्रेनिया से पीड़ित थी, तो उक्त आरोप को साबित करने के लिए ठोस सबूत की आवश्यकता थी । धारा 13 का स्पष्टीकरण विकार की डिग्री को इंगित करता है जिसे साबित किया जाना अपेक्षित है । अभिलेख पर उपलब्ध सबूतों की सावधानीपूर्वक परीक्षा करने पर, हमारी सुविचारित राय यह है कि अपीलार्थी यह साबित करने में बुरी तरह विफल रहा है कि प्रत्यर्थी सिज़ोफ्रेनिया या किसी भी प्रकार के मानसिक विकार या मानसिक रोग से पीड़ित थी जिसका ठीक होना संभव नहीं था और इस कारण से उसके

साथ रहना खतरनाक था । विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने विचारण के दौरान प्रत्यर्थी के आचरण (व्यवहार) को देखने के बाद यह निष्कर्ष निकाला है कि अपीलार्थी, प्रत्यर्थी की प्रतिपरीक्षा के दौरान यह इंगित करने में विफल रहा है कि वह अप्रासंगिक बातें किया करती थीं या उसका व्यवहार हास्यास्पद होता था । विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने ठीक ही निष्कर्ष निकाला है कि अपीलार्थी, प्रत्यर्थी द्वारा उसके साथ की गई क्रूरता को साबित करने में विफल रहा है । विद्वान् कुटुंब न्यायालय का यह निष्कर्ष निकालना न्यायोचित था कि अपीलार्थी अभिलेख पर यह साबित करने में विफल रहा है कि प्रत्यर्थी के व्यवहार के कारण ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई थी कि अपीलार्थी का प्रत्यर्थी के साथ रहना असंभव हो गया था । हमारे अनुसार, विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने साक्ष्यों का उचित मूल्यांकन किया है और ठीक ही निष्कर्ष अभिलिखित किया है और युक्तियुक्त आदेश द्वारा अपीलार्थी की अर्जी खारिज करके ठीक ही किया है । उपरोक्त कारणों के आलोक में, हम विरचित किए गए बिंदुओं का उत्तर यह अभिनिर्धारित करते हुए देते हैं कि अपीलार्थी विवाह-विच्छेद की डिक्री का हकदार नहीं है और विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा अभिलिखित किया गया निष्कर्ष अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर आधारित है और इसलिए यह स्वीकार्य है । विद्वान् कुटुंब न्यायालय के आक्षेपित निर्णय में कोई हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है । (पैरा 13, 14, 15, और 16)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2016 की कुटुंब न्यायालय द्वितीय अपील सं. 11.

कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री ए. डी. गिरडेकर

प्रत्यर्थी की ओर से –

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एन. बी. सूर्यवंशी ने दिया ।

न्या. सूर्यवंशी – यह अपील अपीलार्थी-पति द्वारा कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19 के अधीन फाइल की गई इस अपील में कुटुंब न्यायालय, अमरावती के उस निर्णय को चुनौती दी गई है जिसके

द्वारा अपीलार्थी-पति की ओर से फाइल की गई विवाह-विच्छेद अर्जी सं. ए-319/2009 ख़ारिज की गई थी ।

2. संक्षेप में यह अपील इन तथ्यों के आधार पर फाइल की गई है – अपीलार्थी-पति ने हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13(1)(i-क)(iii) के अधीन 2009 की याचिका सं. ए-319 फाइल की, जिसमें अन्य बातों के साथ यह दलील दी है कि पत्नी लीना के साथ उसका विवाह तारीख 4 अप्रैल, 1997 को अमरावती में हिंदू संस्कार और रीति-रिवाज के अनुसार संपन्न हुआ था । विवाह के बाद उनके यहां दो पुत्रों अर्थात् राहुल (आयु 12 वर्ष) और देवाशीष (आयु 4 वर्ष और छह मास) का जन्म हुआ । विवाह का खर्च पति ने वहन किया । जब से पत्नी, पति के घर आई थी, तभी से उसका व्यवहार मनमाना था, वह झगड़ा करती थी, गालियां देती थी, घर का कामकाज नहीं करती थी और पति के कुटुंब के सदस्यों के साथ क्रूर व्यवहार करती थी, इसी कारण पति और उसके कुटुंब के सदस्यों का मानसिक उत्पीड़न हो रहा था । पत्नी ने पति को मानसिक और शारीरिक सुख से वंचित कर दिया था । पति ने अपनी पत्नी के व्यवहार के बारे में उसके माता-पिता को सूचित किया और उस समय उसे उनसे पता चला कि विवाह के पूर्व से ही वह मनोवैज्ञानिक बीमारी से पीड़ित थी और कभी-कभी उसका मानसिक संतुलन भी बिगड़ जाता था । तथापि, इस तथ्य को पत्नी के माता-पिता ने उससे और उसके कुटुंब के सदस्यों से छिपाया था । पत्नी के माता-पिता ने पति को शांत रहने और विश्वास दिलाने का प्रत्यन किया । दोनों कुटुंब के सम्मानित सदस्यों ने पत्नी का उपचार कराने का निर्णय लिया । पति ने अपने वैवाहिक जीवन और बच्चों के भविष्य पर विचार करते हुए उक्त निर्णय स्वीकार कर लिया । पत्नी को माता-पिता के घर भेज दिया गया और डा. प्रमोद ठाकरे, मनोचिकित्सक, अकोला से उपचार कराया गया । तथापि, पत्नी के व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं आया, इसके विपरीत उसकी मानसिक बीमारी अत्यधिक बिगड़ गई । पत्नी अप्रासंगिक बातें करती थी, बाहर का कूड़ा घर में लाती थी, पति और बच्चों को खाना देने से मना करती थी और उनसे झगड़ा करती थी । इस प्रकार, पति उसे उपचार के लिए मनोचिकित्सक डा. श्रीकांत देशमुख

को दिखाने ले गया । लेकिन उपचार के बावजूद पत्नी की सनक में बढ़ोतरी होती गई । वह डाक्टर द्वारा दी गई औषधियों को फेंक देती थी । उसने आगे कथन किया कि पत्नी के साथ रहना उसके लिए खतरनाक और कठिन हो गया क्योंकि वह शारीरिक और मानसिक रूप से उसके साथ सहवास करने में असमर्थ थी । इन सभी परिस्थितियों के कारण, पति ने पत्नी के छोटे भाई को अमरावती बुलाया और उसके साथ "राखी पूर्णिमा" से पूर्व वर्ष 2009 के अगस्त मास में पत्नी अपने माता-पिता के घर पहुंच गई और तब से पत्नी अपने माता-पिता के घर ही रह रही थी । इन अभिवाकों के आधार पर, पति ने विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए अनुरोध किया ।

3. पत्नी न्यायालय में उपस्थित हुई और लिखित अभिकथन फाइल करते हुए पति के दावे का विरोध किया । विवाह और दो पुत्रों के जन्म के तथ्य को छोड़कर, उसने पति के सभी आरोपों से इनकार कर दिया । उसके अनुसार, पति दूसरा विवाह करना चाहता था । वह सदैव उसके साथ अपशब्द, मारपीट करता था और उसके विरुद्ध भद्दी टिप्पणियां करता था । पति अपनी ड्यूटी से नशे की हालत में घर आया करता था और वह अपनी मां के उकसाने के कारण उसे निर्दयता से पीटा करता था । दो बार उसने उसका गला घोंटने का प्रत्यन किया । पिटाई के कारण उसके कान को क्षति पहुंची और उसे डाक्टर से उपचार कराना पड़ा । तब से उसे सुनने की समस्या उत्पन्न हो गई । तारीख 5 अगस्त, 2009 को "राखी पूर्णिमा" के समय, पति ने उसे निर्दयता से पीटा और उसकी गर्दन दबा दी, उस समय ससुर ने उसे पति से बचाया था । पति उसे बिना बताए झूठा बहाना बनाकर मनोचिकित्सक के पास ले जाता था और औषधि खाने के लिए मजबूर करता था । वह किसी भी बीमारी से पीड़ित नहीं थी और वह मानसिक और शारीरिक रूप से स्वस्थ थी । वह दो पुत्रों की मां थी और उनकी देखभाल ठीक से कर रही थी, तथापि, पति उससे छुटकारा पाने के लिए दूसरा विवाह करना चाहता था, इसलिए वह उसे मानसिक रोगी घोषित करने का प्रत्यन कर रहा था । उसने आगे दलील दी है कि छोटा पुत्र देवाशीष उसके साथ रह रहा था और वह उसकी उचित देखभाल कर रही थी । बड़ा पुत्र राहुल पति के साथ रह

रहा था और पति राहुल को मां के प्यार से वंचित कर रहा था । उसने आगे यह कथन किया कि दोनों पुत्रों को माता और पिता अर्थात् दोनों के प्यार और स्नेह की आवश्यकता है, उनके भविष्य पर विचार करते हुए, वह पति के पास जाने के लिए तैयार थी । जब उसे अपने भाई के साथ माता-पिता के घर जाने के लिए मजबूर होना पड़ा, उस समय पति ने उससे कहा कि वह 15 दिनों के भीतर आकर उसे वापस ले जाएगा । इसलिए, उसने अनुरोध किया कि पति द्वारा फाइल की गई अपील को खारिज कर दिया जाए ।

4. पति ने अपनी याचिका की दलीलों को शब्दशः दोहराते हुए साक्ष्य के बदले में अपना शपथपत्र फाइल किया । उसने मामले के दस्तावेज, डा. श्रीकांत देशमुख और डा. प्रमोद ठाकरे के नुस्खे और औषधियों का एक बिल (प्रदर्श-31 से 34 के रूप में) अभिलेख प्रस्तुत किया । प्रतिपरीक्षा में, पति ने स्वीकृत किया कि उसकी पत्नी के साथ उसका विवाह एक-दूसरे को देखने के बाद तय हुआ था । उसके भाई का विवाह उसकी पत्नी की बहन के साथ हुआ था और उनका विवाह भी "व्यवस्थित विवाह" था । उसने इस बात से इनकार किया कि उसके थप्पड़ मारने के कारण पत्नी के कान में क्षति पहुंची है । उसने स्वीकृत किया कि अधिकतर लोग मनोचिकित्सक से उपचार कराते हैं यदि उन्हें कोई मनोवैज्ञानिक समस्या हो । पति ने यह भी माना कि छोटा पुत्र प्रत्यर्थी (पत्नी) के साथ रहता था और बड़ा पुत्र उसके साथ रहता था । उसने यह भी स्वीकार किया कि 5 अगस्त, 2009 को उसने पत्नी के भाई से उसे माता-पिता के घर ले जाने के लिए कहा था ।

5. पति के पिता अर्थात् साहेबराव की परीक्षा अपीलार्थी द्वारा अभि. सा. 2 के रूप में कराई थी । उसने साक्ष्य में दिए गए अपने शपथपत्र में पति की दलीलों की भी पुनरावृत्ति की है । प्रतिपरीक्षा में, उसने स्वीकृत किया कि उसके छोटे पुत्र का विवाह प्रत्यर्थी की सगी बहन के साथ हुआ था और वह विवाह पति और पत्नी के विवाह के आठ से दस मास बाद हुआ था । उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि पत्नी तारीख 5 अगस्त, 2009 से अपने माता-पिता के घर पर रह रही थी । उसने स्वीकार किया

कि पति के परिजनों ने कभी भी पत्नी के व्यवहार के बारे में थाने में शिकायत दर्ज नहीं कराई । उसने इस बात से इनकार किया कि पत्नी किसी मानसिक बीमारी से पीड़ित नहीं थी ।

6. अपीलार्थी के छोटे भाई प्रमोद की पति द्वारा अभि. सा. 3 के रूप में परीक्षा कराई गई । उसने अपने साक्ष्य में कथन किया कि पति उसका बड़ा भाई है । वह पिछले 12-13 वर्ष से पुलगांव में रह रहा था । उसने पत्नी की छोटी बहन नीटू से विवाह किया था । उनका विवाह एक प्रेम विवाह था जिसे रजिस्ट्रीकृत कराया गया था । उसने कथन किया कि विवाह के बाद से वह अमरावती में नहीं रह रहे थे, लेकिन वह अमरावती आते-जाते रहते थे ।

7. पत्नी ने अपने लिखित अभिकथन में अपनी दलीलों को दोहराते हुए अपना साक्ष्य शपथपत्र फाइल किया । प्रतिपरीक्षा में उसने स्वीकृत किया कि उसने पति और उसके कुटुंब के सदस्यों द्वारा किए गए दुर्व्यवहार के बारे में कभी पुलिस थाने में शिकायत नहीं दी है । उसने यह स्वीकृत किया कि उसने मनोचिकित्सक डा. प्रमोद ठाकरे और डा. श्रीकांत देशमुख से उपचार कराया था । उसने इस बात से इनकार किया कि वह घर में बाहर का कूड़ा-कचरा लाती थी, वह खाना नहीं बनाती थी और उसका पति के परिजनों के साथ झगड़ा होता था और कि वह मानसिक बीमारी से पीड़ित थी । उसने इस बात से इनकार किया कि चूंकि वह नियमित रूप से औषधि नहीं लेती थी, इसलिए उनकी मानसिक स्थिति खराब हो गई और इस प्रकार, उसे डा. देशमुख के पास ले जाया गया ।

8. विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों पर विचार करने के पश्चात्, पति द्वारा फाइल की गई अर्जी खारिज कर दी और उक्त निर्णय वर्तमान अपील में आक्षेपित है ।

9. अपीलार्थी के विद्वान् अधिवक्ता को सुना गया है । उन्होंने यह दलील दी है कि अपीलार्थी ने यह साबित किया था कि प्रत्यर्थी तर्कसम्मत साक्ष्य के अनुसार सिज़ोफ्रेनिया जैसी गंभीर मानसिक बीमारी से पीड़ित थी और कुटुंब न्यायालय ने पति द्वारा फाइल की गई अर्जी

खारिज करके त्रुटि कारित की है । प्रतिपरीक्षा के दौरान प्रत्यर्थी द्वारा दी गई स्वीकृति की ओर इंगित करते हुए, उन्होंने यह दलील दी कि प्रत्यर्थी ने स्वीकृत किया है कि वह सिज़ोफ्रेनिया बीमारी का मनोचिकित्सक से उपचार करा रही थी, उसी पर विचार करते हुए, विद्वान् कुटुंब न्यायालय को अपीलार्थी के पक्ष में विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान कर देनी चाहिए थी । यद्यपि प्रत्यर्थी नोटिस तामील होने के बावजूद उपस्थित नहीं हुई ।

10. अपीलार्थी के विद्वान् अधिवक्ता की दलीलें सुनने के पश्चात्, अवधारण के लिए निम्नलिखित बिंदु उद्भूत होते हैं :–

(i) क्या अपीलार्थी विवाह-विच्छेद की डिक्री का हकदार है ?

(ii) क्या कुटुंब न्यायालय के आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता है ?

11. अपीलार्थी के विद्वान् अधिवक्ता को विस्तार से सुना गया है । हमने साक्ष्य के टिप्पणों सहित मूल अभिलेख का परिशीलन किया है । अपीलार्थी की दलीलों का मूल्यांकन करने के लिए, इसके सुसंगत उपबंध पर विचार करना आवश्यक है :–

"13. विवाह-विच्छेद – (1) कोई भी विवाह, वह इस अधिनियम के प्रारम्भ के चाहे पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो चाहे पश्चात्, पति अथवा पत्नी द्वारा उपस्थापित अर्जी पर विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा इस आधार पर विघटित किया जा सकेगा कि –

(i) दूसरे पक्षकार ने विवाह के अनुष्ठान के पश्चात् अपने पति या अपनी पत्नी से भिन्न किसी व्यक्ति के साथ स्वेच्छया मैथुन किया है ; या

(i-क) दूसरे पक्षकार ने विवाह के अनुष्ठान के पश्चात् अर्जीदार के साथ क्रूरता का व्यवहार किया है ; या

(i-ख) दूसरे पक्षकार ने अर्जी पेश किए जाने से अव्यवहित पूर्व कम से कम दो वर्ष की निरन्तर कालावधि पर अर्जीदार को अभित्यक्त रखा है ; या

(ii) दूसरा पक्षकार अन्य धर्म में संपरिवर्तित हो जाने के कारण हिन्दू नहीं रह गया ; या

(iii) दूसरा पक्षकार असाध्य रूप से विकृत-चित्त रहा है अथवा निरन्तर या आंतरायिक रूप से इस प्रकार के और इस हद तक मानसिक विकार से पीड़ित रहा है कि अर्जीदार से युक्तियुक्त रूप से यह आशा नहीं की जा सकती है कि वह प्रत्यर्थी के साथ रहे ।

स्पष्टीकरण – इस खण्ड में, –

(क) "मानसिक विकार" पद से मानसिक बीमारी, मस्तिष्क का संरोध या अपूर्ण विकास, मनोविकृति या मस्तिष्क का कोई अन्य विकास या नि:शक्तता अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत विखंडित मनस्कता भी है ;

(ख) "मनोविकृति" पद से मस्तिष्क का दीर्घ स्थायी विकार या नि:शक्तता (चाहे इसमें वृद्धि की अवसामान्यता हो या नहीं) अभिप्रेत है जिसे परिणामस्वरूप दूसरे पक्षकार या आचरण असामान्य रूप से आक्रामक या गंभीर रूप से अनुत्तरदायी हो जाता है और चाहे उसके लिए चिकित्सीय उपचार अपेक्षित हो या नहीं अथवा ऐसा उपचार किया जा सकता हो या नहीं ; या,

12. अपीलार्थी को यह साबित करना था कि प्रत्यर्थी असाध्य रूप से विकृत-चित्त थी अथवा यह कि वह निरंतर या आंतरायिक रूप से इस प्रकार के और इस सीमा तक मानसिक विकार से पीड़ित थी कि अर्जीदार से युक्तियुक्त रूप से यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वह प्रत्यर्थी के साथ रहे । अपीलार्थी यह साबित करने के लिए बाध्य था कि प्रत्यर्थी सिज़ोफ्रेनिया से पीड़ित थी और प्रत्यर्थी का व्यवहार आक्रामक या गंभीर रूप से अनुचित था और प्रत्यर्थी लगातार या आंतरायिक रूप से इस सीमा तक मानसिक विकार से पीड़ित थी कि अपीलार्थी से प्रत्यर्थी के साथ रहने की युक्तियुक्त रूप से अपेक्षा नहीं की जा सकती थी ।

13. अपना पक्षकथन साबित करने के लिए अपीलार्थी ने मामले के दस्तावेज के रूप में औषधियों के नुस्खे और उनका एक बिल चिकित्सा दस्तावेज सहित प्रदर्श-31 से 34 तक अभिलेख पर प्रस्तुत किए हैं, तथापि, हमारे अनुसार वे अपीलार्थी के इस आरोप को साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं कि प्रत्यर्थी सिज़ोफ्रेनिया से पीड़ित थी । डा. श्रीकांत देशमुख के दस्तावेज (प्रदर्श-31) से कहीं भी यह दर्शित नहीं होता है कि प्रत्यर्थी सिज़ोफ्रेनिया से पीड़ित थी । अपीलार्थी के विद्वान् अधिवक्ता ने "फार्माको-थेरेपी" के कॉलम में "सिज़ो" शब्द को इंगित करते हुए यह दलील दी कि चिकित्सक का नैदानिक निदान यह है कि प्रत्यर्थी सिज़ोफ्रेनिया से पीड़ित थी किन्तु हम उससे सहमत होने में असमर्थ हैं । अपीलार्थी ही इस बात को बेहतर समझता होगा कि वह अपने मामले का समर्थन करने के लिए डा. श्रीकांत देशमुख और डा. प्रमोद ठाकरे की परीक्षा इस संबंध में कराने में विफल क्यों रहा कि प्रत्यर्थी सिज़ोफ्रेनिया से पीड़ित थी । प्रदर्श-32 से 34 के दस्तावेज़ से भी यह दर्शित नहीं होता है कि प्रत्यर्थी सिज़ोफ्रेनिया से पीड़ित थी । जब अपीलार्थी यह आरोप लगा रहा था कि प्रत्यर्थी सिज़ोफ्रेनिया से पीड़ित थी, तो उक्त आरोप को साबित करने के लिए ठोस सबूत की आवश्यकता थी । धारा 13 का स्पष्टीकरण विकार की डिग्री को इंगित करता है जिसे साबित किया जाना अपेक्षित है ।

14. अभिलेख पर उपलब्ध सबूतों की सावधानीपूर्वक परीक्षा करने पर, हमारी सुविचारित राय यह है कि अपीलार्थी यह साबित करने में बुरी तरह विफल रहा है कि प्रत्यर्थी सिज़ोफ्रेनिया या किसी भी प्रकार के मानसिक विकार या मानसिक रोग से पीड़ित थी जिसका ठीक होना संभव नहीं था और इस कारण से उसके साथ रहना खतरनाक था ।

15. विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने विचारण के दौरान प्रत्यर्थी के आचरण (व्यवहार) को देखने के बाद यह निष्कर्ष निकाला है कि अपीलार्थी, प्रत्यर्थी की प्रतिपरीक्षा के दौरान यह इंगित करने में विफल रहा है कि वह अप्रासंगिक बातें किया करती थी या उसका व्यवहार हास्यास्पद होता था । विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने ठीक ही निष्कर्ष

निकाला है कि अपीलार्थी, प्रत्यर्थी द्वारा उसके साथ की गई क्रूरता को साबित करने में विफल रहा है । विद्वान् कुटुंब न्यायालय का यह निष्कर्ष निकालना न्यायोचित था कि अपीलार्थी अभिलेख पर यह साबित करने में विफल रहा है कि प्रत्यर्थी के व्यवहार के कारण ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई थी कि अपीलार्थी का प्रत्यर्थी के साथ रहना असंभव हो गया था । हमारे अनुसार, विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने साक्ष्यों का उचित मूल्यांकन किया है और ठीक ही निष्कर्ष अभिलिखित किया है और युक्तियुक्त आदेश द्वारा अपीलार्थी की अर्जी खारिज करके ठीक ही किया है ।

16. उपरोक्त कारणों के आलोक में, हम विरचित किए गए बिंदुओं का उत्तर यह अभिनिर्धारित करते हुए देते हैं कि अपीलार्थी विवाह-विच्छेद की डिक्री का हकदार नहीं है और विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा अभिलिखित किया गया निष्कर्ष अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर आधारित है और इसलिए यह स्वीकार्य है । विद्वान् कुटुंब न्यायालय के आक्षेपित निर्णय में कोई हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है ।

17. ऊपर उल्लेखित कारणों के लिए, हमारी सुविचारित राय यह है कि अपील में सार नहीं है और यह खारिज किए जाने योग्य है और तद्नुसार, इसे खारिज किया जाता है । कुटुंब न्यायालय के निर्णय की पुष्टि की जाती है । पक्षकार अपने खर्चे स्वयं वहन करेंगे ।

अपील खारिज की गई ।

मही./अस.

लॉरेंस फिलिमोन डेनियल

बनाम

प्रणाली लॉरेंस डेनियल

(2020 की प्रथम अपील सं. 200)

तारीख 14 अक्तूबर, 2021

न्यायमूर्ति ए. एस. चन्दूरकर और न्यायमूर्ति जी. ए. सनप

विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 (1869 का 4) – धारा 32 – दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन हेतु अपीलार्थी/पति द्वारा विचारण न्यायालय के आदेश के विरुद्ध अपील – साथ ही पति द्वारा पत्नी के विरुद्ध उसके चरित्र को लेकर शिकायत दर्ज कराना – अपीलार्थी-पति ने दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की अर्जी में यह कथन किया था कि सच्चाई जानने के पश्चात् भी उसने अपनी पत्नी को क्षमा कर दिया था और वह उसके साथ वैवाहिक संबंध बनाए रखना चाहता था, इस कथन पर विश्वास किया जा सकता था यदि उसने पत्नी के विरुद्ध कोई कार्यवाही न की होती, अतः यह स्वीकार करना संभव नहीं है कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने बिना किसी युक्तियुक्त कारण के पति का साहचर्य छोड़ा है, इसलिए दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की अर्जी खारिज करने वाला विचारण न्यायालय का निर्णय न्यायोचित है ।

इस मामले में विशेष विवाह अर्जी भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 की धारा 32 के अधीन फाइल की गई है । अपीलार्थी का यह पक्षकथन है कि प्रत्यर्थी के साथ उसका विवाह तारीख 4 नवंबर, 2016 को हुआ था । यह विवाह रजिस्ट्रीकृत किया गया । यह अभिकथन किया गया है कि विवाह के आयोजन के एक दिन पहले प्रकाश डेविड घूले नाम के किसी व्यक्ति ने अपीलार्थी को फोन पर सूचित किया कि प्रत्यर्थी का विवाह उसके साथ पहले ही हो चुका है । अपीलार्थी-पति को इस पर विश्वास नहीं हुआ इसलिए उसने इस बात पर ध्यान नहीं दिया । विवाह के पश्चात्, अपीलार्थी-पति और प्रत्यर्थी-पत्नी

कुछ दिन अमरावती में निवास किया और इसके पश्चात् वे पूना जाकर रहने लगे । अपीलार्थी पूना में काम करता है । प्रत्यर्थी औरंगाबाद में कार्यरत है । यह अभिकथन किया गया है कि विवाह के कुछ महीने बाद अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी के व्यवहार में परिवर्तन महसूस किया । प्रत्यर्थी रविवार और अन्य सरकारी अवकाश पर भी घर पर नहीं ठहरती थी । प्रत्यर्थी-पत्नी अपीलार्थी के साथ गाली-गलौज किया करती थी । जनवरी, 2017 से प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी को पति की हैसियत से अपने साथ संबंध बनाने से रोक दिया था । वह सदैव अन्य व्यक्तियों से मोबाइल फोन पर बात करने में व्यस्त रहती थी । अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी से इस संबंध में प्रश्न किया । प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी को यह बताया कि वह प्रकाश डेविड घूले नाम के व्यक्ति के साथ पहले ही विवाह कर चुकी है और इसलिए वह प्रकाश के बिना नहीं रह सकती । अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी को माफ कर दिया । अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी को समझाया कि वह अपीलार्थी के साथ सुखी-वैवाहिक जीवन बिताए । किंतु प्रत्यर्थी के व्यवहार में कोई सुधार नहीं आया । तारीख 10 अप्रैल, 2017 को रात के समय ए.टी.एम. मशीन से पैसे निकालने के बहाने घर से बाहर गई । अपीलार्थी ने इस संबंध में पुलिस थाना फरैजरपुरा, अमरावती में रिपोर्ट दर्ज कराई । अपीलार्थी का यह पक्षकथन है कि प्रत्यर्थी बिना किसी युक्तियुक्त कारण के उसे छोड़कर गई है । वह उसके साथ रहना चाहता है और वैवाहिक-बंधन बनाए रखने में इच्छुक है । अत: उसने दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की डिक्री हेतु प्रार्थना की । प्रत्यर्थी-पत्नी ने इस अर्जी का विरोध करते हुए अपना उत्तर (प्रदर्श-15) फाइल किया । प्रत्यर्थी ने शिकायत में किए गए महत्वपूर्ण अभिकथनों से इनकार किया । प्रत्यर्थी-पत्नी ने विवाह के तथ्य को स्वीकार किया है । यह दलील दी गई है कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी दोनों ही पैरा-मेडिकल विभाग में काम करते थे इसलिए उनके माता-पिता ने उनका विवाह तय कर दिया था । प्रत्यर्थी-पत्नी के अनुसार विवाह के पश्चात् अपीलार्थी का आचरण ठीक नहीं था । विवाह के पश्चात् अपीलार्थी औरंगाबाद जाकर रहने लगा जहां प्रत्यर्थी सेवारत थी । अपीलार्थी उसका वेतन छीन लिया करता था और धन को लेकर झगड़ा किया करता था । अपीलार्थी, प्रत्यर्थी के साथ किसी भी प्रकार का संबंध बनाए रखना चाहता था । अपीलार्थी ने

प्रत्यर्थी के साथ मानसिक और शारीरिक यातनापूर्ण व्यवहार किया । यद्यपि प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपीलार्थी को समझाने का प्रयास किया किंतु फिर भी अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी के साथ कोई भी संबंध रखने से इनकार किया और बिना किसी कारण उसे छोड़कर चला गया । शुरू-शुरू में प्रत्यर्थी-पत्नी ने यह सब सहन किया किंतु जब अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी के चरित्र पर संदेह किया तब स्थिति नियंत्रण के परे हो गई । अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी और उसके परिवार के सदस्यों के विरुद्ध मिथ्या शिकायत दर्ज कराई । प्रत्यर्थी-पत्नी ने यह प्रतिवाद किया कि अपीलार्थी के ऐसे व्यवहार के कारण उसके साथ पुन: रहना अत्यंत कठिन होगा । विचारण न्यायालय में अपीलार्थी ने स्वयं अपनी परीक्षा कराई । प्रत्यर्थी ने पुरसी फाइल की । यह घोषित किया कि वह साक्ष्य प्रस्तुत नहीं करेगी । विद्वान् जिला न्यायाधीश ने अपीलार्थी के साक्ष्य में अभिलेख पर उपलब्ध कतिपय तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए डिक्री प्रदान किए जाने हेतु कोई भी मामला नहीं बनता है और इस प्रकार अर्जी खारिज की गई । जिला न्यायाधीश के इस आदेश के विरुद्ध पति द्वारा प्रथम अपील फाइल की गई । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस उपबंध के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की डिक्री प्रदान किए जाने के पूर्व न्यायालय का यह समाधान होना चाहिए कि अर्जी में किए गए कथन सत्य हैं और यह कि पति या पत्नी में से किस पक्षकार ने बिना किसी युक्तियुक्त कारण के दूसरे पक्षकार का साथ छोड़ा है । दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि यदि न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि यदि पति या पत्नी में से कोई भी दूसरे की संगति छोड़ता है तब न्यायालय के लिए अर्जी में किए गए कथनों की सत्यता से संबंधित अपना समाधान अभिलिखित करना कठिन होगा । लिखित कथन में प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपनी प्रतिरक्षा से संबंधित स्पष्ट कथन किया है । अपीलार्थी-पति ने दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए जो अर्जी फाइल की थी उसमें यह कथन किया था कि सच्चाई जानने के पश्चात् भी अपनी पत्नी को क्षमा कर दिया था और वह उसके

साथ वैवाहिक संबंध बनाए रखना चाहता था । इस कथन पर विश्वास किया जा सकता था कि यदि उसने अन्य कोई कार्यवाही आरंभ न की होती और अपीलार्थी द्वारा ऐसा किए जाने से न्यायालय में उसके द्वारा लिए गए कथन का सीधा खंडन होता है । जैसाकि पहले ही कथन किया गया है कि प्रत्यर्थी-पत्नी, उसके परिजनों और प्रकाश घूले के विरुद्ध आपराधिक मामला फाइल किया गया था, हमारी राय में, अपीलार्थी के साक्ष्य की सत्यता गंभीर रूप से प्रभावित होती है । यह साबित हो चुका है कि अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी के चरित्र पर न केवल संदेह किया है अपितु उसे आपराधिक लिखित शिकायत के रूप में अभिलेख पर प्रस्तुत भी किया है । जिला न्यायाधीश के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि विद्वान् न्यायाधीश ने सभी पहलुओं पर विचार किया है और उसी के आधार पर दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की डिक्री खारिज की है । साक्ष्य का नए सिरे से मूल्यांकन करने पर हमें अपीलार्थी के पक्षकथन में कोई सार दिखाई नहीं देता है । साबित किए गए तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए हमारा यह समाधान हो गया है कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच विवाह में बिगाड़ आ गया है । अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य की पृष्ठभूमि में अपीलार्थी का यह पक्षकथन स्वीकार करना संभव नहीं है कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने बिना किसी युक्तियुक्त कारण के पति का साहचर्य छोड़ा है । (पैरा 10 और 11)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2020 की प्रथम अपील सं. 200.

2017 की विशेष विवाह अर्जी सं. 6 में विद्वान् जिला न्यायाधीश, अमरावती द्वारा तारीख 1 अक्तूबर, 2019 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री पी. बी. पाटिल

प्रत्यर्थी की ओर से –

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति जी. ए. सनप ने दिया ।

न्या. सनप – अपीलार्थी (मूल-अर्जीदार) ने यह अपील 2017 की विशेष विवाह अर्जी सं. 6 में विद्वान् जिला न्यायाधीश, अमरावती द्वारा

तारीख 1 अक्तूबर, 2019 को पारित उस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की है जिसके द्वारा विद्वान् न्यायाधीश ने दाम्पत्य अधिकारों के प्रतिस्थापन की डिक्री पारित किए जाने के लिए फाइल की गई अर्जी खारिज कर दी थी ।

2. जिन तथ्यों के आधार पर यह अपील फाइल की गई है वे निम्न प्रकार हैं :–

विशेष विवाह अर्जी भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 की धारा 32 के अधीन फाइल की गई है । अपीलार्थी का यह पक्षकथन है कि प्रत्यर्थी के साथ उसका विवाह तारीख 4 नवंबर, 2016 को हुआ था । यह विवाह रजिस्ट्रीकृत किया गया । यह अभिकथन किया गया है कि विवाह के आयोजन के एक दिन पहले प्रकाश डेविड घूले नाम के किसी व्यक्ति ने अपीलार्थी को फोन पर सूचित किया कि प्रत्यर्थी का विवाह उसके साथ पहले ही हो चुका है । अपीलार्थी-पति को इस पर विश्वास नहीं हुआ इसलिए उसने इस बात पर ध्यान नहीं दिया । विवाह के पश्चात्, अपीलार्थी-पति और प्रत्यर्थी-पत्नी कुछ दिन अमरावती में निवास किया और इसके पश्चात् वे पूना जाकर रहने लगे । अपीलार्थी पूना में काम करता है । प्रत्यर्थी औरंगाबाद में कार्यरत है । यह अभिकथन किया गया है कि विवाह के कुछ महीने बाद अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी के व्यवहार में परिवर्तन महसूस किया । प्रत्यर्थी रविवार और अन्य सरकारी अवकाश पर भी घर पर नहीं ठहरती थी । प्रत्यर्थी-पत्नी अपीलार्थी के साथ गाली-गलौज किया करती थी । जनवरी, 2017 से प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी को पति की हैसियत से अपने साथ संबंध बनाने से रोक दिया था । वह सदैव अन्य व्यक्तियों से मोबाइल फोन पर बात करने में व्यस्त रहती थी । अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी से इस संबंध में प्रश्न किया । प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी को यह बताया कि वह प्रकाश डेविड घूले नाम के व्यक्ति के साथ पहले ही विवाह कर चुकी है और इसलिए वह प्रकाश के बिना नहीं रह सकती । अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी को माफ कर दिया । अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी को समझाया कि वह अपीलार्थी के साथ सुखी-वैवाहिक जीवन बिताए । किंतु प्रत्यर्थी

के व्यवहार में कोई सुधार नहीं आया । तारीख 10 अप्रैल, 2017 को रात के समय ए. टी. एम. मशीन से पैसे निकालने के बहाने घर से बाहर गई । अपीलार्थी ने इस संबंध में पुलिस थाना फरैजरपुरा, अमरावती में रिपोर्ट दर्ज कराई । अपीलार्थी का यह पक्षकथन है कि प्रत्यर्थी बिना किसी युक्तियुक्त कारण के उसे छोड़कर गई है । वह उसके साथ रहना चाहता है और वैवाहिक-बंधन बनाए रखने में इच्छुक है । अत: उसने दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की डिक्री हेतु प्रार्थना की ।

3. प्रत्यर्थी-पत्नी ने इस अर्जी का विरोध करते हुए अपना उत्तर (प्रदर्श-15) फाइल किया । प्रत्यर्थी ने शिकायत में किए गए महत्वपूर्ण अभिकथनों से इनकार किया । प्रत्यर्थी-पत्नी ने विवाह के तथ्य को स्वीकार किया है । यह दलील दी गई है कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी दोनों ही पेरा-मेडिकल विभाग में काम करते थे इसलिए उनके माता-पिता ने उनका विवाह तय कर दिया था । प्रत्यर्थी-पत्नी के अनुसार विवाह के पश्चात् अपीलार्थी का आचरण ठीक नहीं था । विवाह के पश्चात् अपीलार्थी औरंगाबाद जाकर रहने लगा जहां प्रत्यर्थी सेवारत थी । अपीलार्थी उसका वेतन छीन लिया करता था और धन को लेकर झगड़ा किया करता था । अपीलार्थी, प्रत्यर्थी के साथ किसी भी प्रकार का संबंध बनाए रखना चाहता था । अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी के साथ मानसिक और शारीरिक यातनापूर्ण व्यवहार किया । यद्यपि प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपीलार्थी को समझाने का प्रयास किया किंतु फिर भी अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी के साथ कोई भी संबंध रखने से इनकार किया और बिना किसी कारण उसे छोड़कर चला गया । शुरू-शुरू में प्रत्यर्थी-पत्नी ने यह सब सहन किया किंतु जब अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी के चरित्र पर संदेह किया तब स्थिति नियंत्रण के परे हो गई । अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी और उसके परिवार के सदस्यों के विरुद्ध मिथ्या शिकायत दर्ज कराई । प्रत्यर्थी-पत्नी ने यह प्रतिवाद किया कि अपीलार्थी के ऐसे बरताव के कारण उसके साथ पुन: रहना अत्यंत कठिन होगा ।

4. विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी ने स्वयं अपनी परीक्षा कराई । प्रत्यर्थी ने पुरसी फाइल की । यह घोषित किया कि वह साक्ष्य प्रस्तुत

नहीं करेगी । विद्वान् जिला न्यायाधीश ने अपीलार्थी के साक्ष्य में अभिलेख पर उपलब्ध कतिपय तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए डिक्री प्रदान किए जाने हेतु कोई भी मामला नहीं बनता है और इस प्रकार अर्जी खारिज की गई ।

5. इस निर्णय और आदेश से व्यथित होकर अपीलार्थी ने इस न्यायालय के समक्ष अपील प्रस्तुत की है । अपील में नोटिस तामील किए जाने के बावजूद प्रत्यर्थी इस न्यायालय के समक्ष पेश होने में असफल रही है ।

6. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल की सहायता से हमने अभिलेख और कार्यवाहियों का परिशीलन किया है । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि प्रत्यर्थी द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत न किए जाने के कारण विद्वान् जिला न्यायाधीश को अपीलार्थी का दावा स्वीकार करना चाहिए था । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई है कि दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अर्जी से ही अपीलार्थी के सद्भावपूर्ण होने का पता चलता है । उन्होंने यह दलील दी है कि विद्वान् जिला न्यायाधीश अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य पर समुचित परिप्रेक्ष्य में विचार नहीं कर सके हैं और उन्होंने गलत निष्कर्ष निकाला है ।

7. आरंभ में अपील की गुणता से संबंधित निर्विवादित तथ्यों पर विचार करना आवश्यक होगा । प्रत्यर्थी-पत्नी ने तारीख 17 जून, 2021 को कुटुंब न्यायालय, जलना में भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 के अधीन विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी फाइल की है । अपीलार्थी ने तारीख 22 अप्रैल, 2017 को दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए जिला न्यायालय, अमरावती के समक्ष अर्जी फाइल की थी । इस अर्जी में अपीलार्थी-पति ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि किसी प्रकाश घूले नाम के व्यक्ति के साथ उसकी पत्नी के संबंध हैं । यह भी निर्विवादित है कि अपीलार्थी ने मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, अमरावती के समक्ष प्रत्यर्थी और उसके परिजनों के विरुद्ध 24 अप्रैल, 2017 को दंड प्रक्रिया, 1860 की धारा 34 के साथ पठित धारा 493, 495, 496, 497 और 498 के अधीन शिकायत दर्ज कराई है । इस शिकायत में अपीलार्थी

ने स्पष्ट रूप से प्रत्यर्थी के प्रकाश घूले के साथ विवाहेत्तर संबंधों के बारे में स्पष्ट कथन किया है । हमारी राय में, अपील विनिश्चित करते समय पूर्वोक्त बातों पर विचार करना महत्वपूर्ण होगा ।

8. अभिलेख के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने कुटुंब न्यायालय, जलना के समक्ष अर्जी फाइल की है कि जिसमें क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित किए जाने की ईप्सा की है । अपने लिखित कथन में प्रत्यर्थी ने स्पष्ट रूप से यह उल्लेख किया है कि अपीलार्थी उसे धन की मांग को लेकर तंग किया करता था । पत्नी ने यह भी बताया है कि अपीलार्थी उसके चरित्र पर संदेह किया करता था । विद्वान् जिला न्यायाधीश ने साक्ष्य और भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 की धारा 32 के उपबंधों पर विचार करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि अपीलार्थी द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य डिक्री प्रदान किए जाने के लिए पर्याप्त नहीं है । साक्ष्य विशेषकर अपीलार्थी की प्रतिपरीक्षा का परिशीलन करने पर यह पता चलता है कि अर्जी फाइल किए जाने के लिए दो दिन के भीतर उसने प्रत्यर्थी, उसके परिजन और प्रकाश घूले के विरुद्ध आपराधिक शिकायत दर्ज कराई । अपीलार्थी की प्रतिपरीक्षा के दौरान उसने यह स्वीकार किया है कि उसने उक्त शिकायत सत्य तथ्यों को अभिलेख पर लाने के लिए की है । पति ने इस सुझाव से इनकार किया है कि उसने दांडिक मामले में प्रत्यर्थी-पत्नी के विरुद्ध मिथ्या अभिकथन किए हैं । इस मामले में, यह साबित हो गया है कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी एक-दूसरे पर आरोप लगाते आ रहे हैं । अपीलार्थी ने आपराधिक शिकायत में एक गंभीर आरोप प्रत्यर्थी के प्रकाश घूले विवाहेत्तर संबंधों को लेकर लगाया है । अपीलार्थी-पति ने अपने अभिकथनों को साबित करने के लिए कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है । अपीलार्थी ने अभिलेख पर अपने और प्रकाश घूले के बीच फोन पर हुई बातचीत की रिकार्डिंग भी प्रस्तुत की है । तथापि, यह रिकार्डिंग साबित नहीं की गई है । अभिलेख के आधार पर यह पाया गया है कि अपीलार्थी ने इस बिन्दु पर विरोधाभासी असंगत कथन दिया है ।

9. इस पृष्ठभूमि में, भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 की

धारा 32 के उपबंधों की परिधि पर विचार करना आवश्यक होगा । सुविधा की दृष्टि से इस उपबंध को निम्न प्रकार उद्धृत किया जा रहा है :–

> "जब पति या पत्नी में से किसी पक्षकार ने बिना किसी युक्तियुक्त कारण के दूसरे पक्षकार के साहचर्य से अलग हो गया है, तब पीड़ित पक्षकार जिला न्यायालय या उच्च न्यायालय के समक्ष दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए आवेदन कर सकता है और ऐसे आवेदन में किए गए कथनों की सच्चाई से संतुष्ट होकर और इस आवेदन के ख़ारिज किए जाने का कोई आधार न पाए जाने पर न्यायालय दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए तद्नुसार डिक्री पारित कर सकता है ।"

10. इस उपबंध के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की डिक्री प्रदान किए जाने के पूर्व न्यायालय का यह समाधान होना चाहिए कि अर्जी में किए गए कथन सत्य हैं और यह कि पति या पत्नी में से किस पक्षकार ने बिना किसी युक्तियुक्त कारण के दूसरे पक्षकार का साथ छोड़ा है । दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि यदि न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि यदि पति या पत्नी में से कोई भी दूसरे की संगति छोड़ता है तब न्यायालय के लिए अर्जी में किए गए कथनों की सत्यता से संबंधित अपना समाधान अभिलिखित करना कठिन होगा । लिखित कथन में प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपनी प्रतिरक्षा से संबंधी स्पष्ट कथन किया है । अपीलार्थी ने अपीलार्थी-पति ने दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए जो अर्जी फाइल की थी उसमें यह कथन किया था कि सच्चाई जानने के पश्चात् भी अपनी पत्नी को क्षमा कर दिया था और वह उसके साथ वैवाहिक संबंध बनाए रखना चाहता था । इस कथन पर विश्वास किया जा सकता था कि यदि उसने अन्य कोई कार्यवाही आरंभ न की होती और अपीलार्थी द्वारा ऐसा किए जाने से न्यायालय में उसके द्वारा लिए गए कथन का सीधा खंडन होता है । जैसाकि पहले ही कथन किया गया है कि प्रत्यर्थी-पत्नी, उसके परिजनों और प्रकाश घूले के विरुद्ध आपराधिक मामला

फाइल किया गया था, हमारी राय में, अपीलार्थी के साक्ष्य की सत्यता गंभीर रूप से प्रभावित होती है । यह साबित हो चुका है कि अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी के चरित्र पर न केवल संदेह किया है अपितु उसे आपराधिक लिखित शिकायत के रूप में अभिलेख पर प्रस्तुत भी किया है । जिला न्यायाधीश के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि विद्वान् न्यायाधीश ने सभी पहलुओं पर विचार किया है और उसी के आधार पर दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की डिक्री खारिज की है ।

11. साक्ष्य का नए सिरे से मूल्यांकन करने पर हमें अपीलार्थी के पक्षकथन में कोई सार दिखाई नहीं देता है । साबित किए गए तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए हमारा यह समाधान हो गया है कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच विवाह में बिगाड़ आ गया है । अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य की पृष्ठभूमि में अपीलार्थी का यह पक्षकथन स्वीकार करना संभव नहीं है कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने बिना किसी युक्तियुक्त कारण के पति का साहचर्य छोड़ा है ।

12. हमारी राय में, अपील में कोई सार नहीं है । विद्वान् जिला न्यायाधीश, अमरावती द्वारा पारित किए गए निर्णय और डिक्री में हस्तक्षेप किया जाना वांछित नहीं है ।

13. उपरोक्त बातों को दृष्टिगत करते हुए हम अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलील को स्वीकार नहीं कर सकते । अत: यह अपील खारिज किए जाने योग्य है । इसलिए निम्न आदेश किया जाता है :–

आदेश

(i) प्रथम अपील खारिज की जाती है ।

(ii) खर्चों के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

अस.

(2021) 2 सि. नि. प. 700 **मद्रास**

ए. एस. बिलाल

बनाम

ए. रईसा नसरीन

(2021 की सिविल प्रकीर्ण अपील सं. 390)

तारीख 30 नवंबर, 2021

न्यायमूर्ति एस. वैद्यनाथन और न्यायमूर्ति जी. जयचन्द्रन

संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 (1890 का 8) – धारा 7 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 9, नियम 4] – संरक्षकता – 7 वर्ष की अप्राप्तवय कन्या को संरक्षकता में लेने के लिए पिता द्वारा आवेदन फाइल किया जाना – पेश न होने के व्यतिक्रम के कारण आवेदन का ख़ारिज हो जाना – अपीलार्थी ने अपनी कन्या को अपनी अभिरक्षा में लेने के लिए गंभीर प्रयास नहीं किए हैं और कई तारीखों पर न्यायालय में अनुपस्थित भी रहा है और अनावश्यक मामले को लंबित रखा है ऐसी स्थिति में निचले न्यायालय द्वारा अपीलार्थी का आवेदन ठीक ही ख़ारिज किया गया है और अपीलार्थी अप्राप्तवय कन्या को अपनी संरक्षा में लेने का हक़दार नहीं है ।

इस मामले में का अपीलार्थी, अप्राप्तवय कन्या आयशा इमाया (जन्मतिथि 7 अक्तूबर, 2010) का पिता है । अपीलार्थी और प्रत्यर्थी का विवाह 27 दिसंबर, 2009 को हुआ था । आयशा इमाया का जन्म 7 अक्तूबर, 2010 को हुआ था । दंपत्तियों का विवाहित जीवन विवादपूर्ण हो गया जिसके परिणामस्वरूप मुस्लिम समुदाय में प्रचलित और स्वीकार्य प्रक्रिया अर्थात् 'खुला' के माध्यम से तलाक लेकर विवाह विघटित हो गया है । दंपत्तियों के बीच तारीख 21 जुलाई, 2017 से विवाह-विच्छेद प्रभावी हुआ है । इस तारीख के पूर्व भी अपीलार्थी और प्रत्यर्थी ने एक-दूसरे के परिवार के सदस्यों के विरुद्ध वैवाहिक संबंधी आपराधिक तथा सिविल मामले फाइल किए हैं । यह सिविल प्रकीर्ण अपील 2016 की जी. डब्ल्यू. ओ. पी. सं. 1 अर्थात् संरक्षक और

प्रतिपाल्य मूल अर्जी सं. 1 (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "मूल अर्जी" कहा गया है) में 2019 के अंतरिम आवेदन सं. 5 में विद्वान् कुटुंब न्यायालय, शिवगंगई के तारीख 23 जनवरी, 2020 के आदेश के विरुद्ध और 2016 की इस मूल अर्जी को बहाल करने हेतु फाइल की गई है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस न्यायालय को, इस तथ्य की जानकारी होने पर कि हमारे समक्ष प्रस्तुत की गई अपील का उद्देश्य यह परखना है कि क्या प्रत्यावर्तन की अर्जी खारिज करने वाला विचारण न्यायालय का आदेश तथ्यों के समुचित मूल्यांकन के आधार पर पारित किया गया है या नहीं और वह न्यायोचित है या नहीं, तथ्यों तथा विधि की संवीक्षा भी करनी है । अपीलार्थी का मामला यह है कि इस मामले में के प्रत्यर्थी ने वर्ष 2015 में अपीलार्थी की अभिरक्षा से बच्चा ले लिया था और वह अपने माता-पिता के साथ इलियांकुडी में रह रही है और अब वह अध्यापिका के रूप में सेवा कर रही है । यह भी स्वीकृत तथ्य है कि पुत्री की आयु लगभग 11 वर्ष है और उसे मानसिक रोग है और उसका इलाज भी चल रहा है । इस पृष्ठभूमि में अपीलार्थी अर्थात् अप्राप्तवय बच्चे के पिता द्वारा वर्ष 2016 में मूल अर्जी संस्थित की गई है । तथापि, वह बच्चे को अपनी अभिरक्षा में लेने या उससे मुलाकात के अधिकार के लिए गंभीर रूप से प्रयास नहीं कर रहा है । तारीख 18 जनवरी, 2019 को इस मामले में के अपीलार्थी ने अपना काउंसेल बदला है और श्री टी. कुमार की सहायता लिए जाने हेतु न्यायालय से अनुज्ञा की ईप्सा की है । नए काउंसेल ने मामले की कार्यवाही के लिए समय मांगा है और उनके निवेदन पर विचारण न्यायालय ने मामले को इस शर्त के साथ 20 फरवरी, 2019 के लिए स्थगित किया है कि अब आगे स्थगन की कोई तारीख नहीं दी जाएगी । तारीख 20 फरवरी, 2019 को दोनों पक्षकार मौजूद थे । अपीलार्थी की मुख्य परीक्षा अभि. सा. 12 के रूप में कराई गई । ग्यारह प्रदर्श चिह्नांकित किए गए । अभि. सा. 1 की प्रतिपरीक्षा कराए जाने के लिए मामले को तारीख 2 अप्रैल, 2019 तक के लिए स्थगित कर दिया गया । उक्त परिस्थिति में जब मामले की सुनवाई 2 अप्रैल, 2019 को की गई तब अर्जीदार अनुपस्थित था

और इसीलिए मामला खारिज किए जाने का आदेश पारित किया गया । विचारण न्यायालय ने जी. डब्ल्यू. ओ. पी. खारिज करते समय उपरोक्त कारण अभिलिखित किया । पक्षकारों के बीच अनेक मामलों में किए गए अभिवाकों और एस.एम.एस. के माध्यम से फोन पर भेजे गए सभी संदेशों से अपीलार्थी की दुर्भावना का पता चलता है और उससे संबंधित संपूर्ण दस्तावेजों का परिशीलन करने के पश्चात् यह अकाट्य निष्कर्ष निकलता है कि अपीलार्थी 11 वर्ष की कन्या का संरक्षक बनने के लिए सक्षम नहीं है । अत:, अप्राप्तवय बच्चे के हित में भी न्यायालय का यह मत है कि अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई मूल अर्जी खारिज की जानी चाहिए वरना प्रत्यर्थी और अप्राप्तवय बच्चे के जीवन में कठिनाई पैदा होना आवश्यक है । (पैरा 8, 9, 13 और 15)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2021 की सिविल प्रकीर्ण अपील सं. 390.

2016 के जी. डब्ल्यू. ओ. पी. सं. 1 में 2019 के अंतरिम आवेदन सं. 5 में विद्वान् कुटुंब न्यायालय, शिवगंगई के तारीख 23 जनवरी, 2020 के आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से — श्री ए. के. एस. ताहिर और श्री एस. मुतुकृष्णन्

प्रत्यर्थी की ओर से — श्री टी. लाजपति

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एस. वैद्यनाथन ने दिया ।

न्या. वैद्यनाथन – यह सिविल प्रकीर्ण अपील 2016 की जी. डब्ल्यू. ओ. पी. सं. 1 अर्थात् संरक्षक और प्रतिपाल्य मूल अर्जी सं. 1 (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "मूल अर्जी" कहा गया है) में 2019 के अंतरिम आवेदन सं. 5 में विद्वान् कुटुंब न्यायालय, शिवगंगई के तारीख 23 जनवरी, 2020 के आदेश के विरुद्ध और 2016 की इस मूल अर्जी को बहाल करने हेतु फाइल की गई है ।

2. इस मामले में का अपीलार्थी, अप्राप्तवय कन्या आयशा इमाया (जन्मतिथि 7 अक्तूबर, 2010) का पिता है । अपीलार्थी और प्रत्यर्थी का विवाह 27 दिसंबर, 2009 को हुआ था । आयशा इमाया का जन्म 7

अक्तूबर, 2010 को हुआ था । दंपत्तियों का विवाहित जीवन विवादपूर्ण हो गया जिसके परिणामस्वरूप मुस्लिम समुदाय में प्रचलित और स्वीकार्य प्रक्रिया अर्थात् 'खुला' के माध्यम से तलाक लेकर विवाह विघटित हो गया है । दंपत्तियों के बीच तारीख 21 जुलाई, 2017 से विवाह-विच्छेद प्रभावी हुआ है । इस तारीख के पूर्व भी अपीलार्थी और प्रत्यर्थी ने एक-दूसरे के परिवार के सदस्यों के विरुद्ध वैवाहिक संबंधी आपराधिक तथा सिविल मामले फाइल किए हैं ।

3. अपीलार्थी और उसका पिता चेन्नई में विधि व्यवसाय करने वाले वकील हैं इसलिए पक्षकारों के बीच काफी मुकदमेबाजी हुई है ।

4. अपील की गुणता पर विचार करने के पूर्व इस मामले के महत्वपूर्ण तथ्यों पर ध्यान देना आवश्यक होगा जो निम्न प्रकार है :–

(i) इस मामले में के अपीलार्थी ने 2016 की मूल अर्जी सं. 1 कुटुंब न्यायालय, शिवगंगई के समक्ष फाइल की जिसमें संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 की धारा 7 के अधीन अप्राप्तवय बच्ची की अभिरक्षा की ईप्सा की गई । जब इस मामले की सुनवाई 9 फरवरी, 2017; 20 फरवरी, 2017; 1 मार्च, 2017; 7 मार्च, 2017; 16 मार्च, 2017; 23 मार्च, 2017 और 24 मार्च, 2017 को की गई तब इस मामले में का अपीलार्थी, जो मूल अर्जी में अर्जीदार है, न्यायालय में पेश नहीं हुआ । अत: कुटुंब न्यायालय ने व्यतिक्रम के आधार पर मूल अर्जी को खारिज कर दिया ।

(ii) इस आदेश से व्यथित होकर इस मामले में के अपीलार्थी ने विचारण न्यायालय के समक्ष 118 दिन के विलंब के साथ अर्जी के प्रत्यावर्तन के लिए आवेदन फाइल किया । चूंकि विलंब की माफी के लिए फाइल किए गए आवेदन को विचारण न्यायालय के रजिस्ट्री विभाग द्वारा नंबरीकृत नहीं किया गया था, इसलिए अपीलार्थी ने सिविल पुनरीक्षण याचिका सं. 2294/2017 इस न्यायालय के समक्ष फाइल की जिसमें कुटुंब न्यायालय, शिवगंगई को यह निदेश दिए जाने की ईप्सा की गई कि अनंबरीकृत आवेदन को नंबरीकृत किया जाए और साथ ही 118 दिन के विलंब को माफ करते हुए अर्जी को प्रत्यावर्तित किया जाए ।

(iii) इस उच्च न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश ने तारीख 24 जनवरी, 2018 के आदेश द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि विलंब की माफी के लिए फाइल किए गए आवेदन को नंबरीकृत नहीं किया गया था क्योंकि इस मामले में का अपीलार्थी निचले न्यायालय में अर्जीदार के रूप में उक्त आवेदन की सुनवाई के समय व्यक्तिगत रूप से उपस्थित नहीं था जो कि कुटुंब न्यायालय अधिनियम के अधीन विहित एक आम प्रक्रिया है । अत:, न्यायालय ने निम्न निर्देशों के साथ तारीख 24 जनवरी, 2018 को इस मामले में के अपीलार्थी द्वारा फाइल किए गए सिविल पुनरीक्षण आवेदन सं. 2294/2017 का निपटारा किया –

> "7. अत: आवेदक को एतद्द्वारा यह निदेश दिया जाता है कि वह कुटुंब न्यायालय शिवगंगई के समक्ष स्वयं पेश होकर इस आदेश की प्रति की प्राप्ति की तारीख से 2 सप्ताह के भीतर सुस्थापित विधि के अनुसार दस्तावेज प्रस्तुत करे । इस प्रकार दस्तावेज फाइल किए जाने पर विद्वान् न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, शिवगंगई उन पर विचार करेगा और विधि के अनुसरण में यथासंभव शीघ्र निपटारा करेगा ।"

(iv) इसके पश्चात् विलंब माफ किया गया, मूल अर्जी फाइल पर प्रत्यावर्तित की गई और विचारण की कार्यवाही आरंभ की गई । तथापि, अपीलार्थी ने पुन: विचारण कार्यवाही में ठीक प्रकार भाग नहीं लिया और मामले में कई बार स्थगन हेतु तारीखें ली गईं जबकि विचारण न्यायालय के लिए इस न्यायालय द्वारा यह निदेश दिया गया था कि मूल अर्जी का निपटारा यथासंभव शीघ्र किया जाना चाहिए । इन परिस्थितियों में कुटुंब न्यायालय, शिवगंगई ने इस मामले को कई बार इस आधार पर स्थगित किया कि अर्जीदार तैयार नहीं है और अंतिम बार तारीख 20 फरवरी, 2019 को यह अभिलिखित करते हुए मामला स्थगित किया गया कि अब इस तारीख के पश्चात् स्थगन के लिए कोई भी तारीख नहीं दी जाएगी । तारीख 20 फरवरी, 2019 को इस मामले में का अपीलार्थी न्यायालय में पेश हुआ और निम्नलिखित रूप में कार्यवाही की गई –

"दोनों पक्षकार मौजूद हैं । याची की परीक्षा अभि. सा. 1 के रूप में कराई गई है जिसकी मुख्य परीक्षा प्रदर्श पी-1 से प्रदर्श पी-11 है । अभि. सा. 1 की प्रतिपरीक्षा तारीख 2 अप्रैल, 2019 को कराई गई ।

हस्ताक्षर – अपर सेशन न्यायाधीश,
कुटुंब न्यायालय शिवगंगई ।"

तथापि, तारीख 2 अप्रैल, 2019 को इस मामले में का अपीलार्थी न्यायालय में उपस्थित नहीं हुआ । अत: विचारण न्यायालय ने निम्न प्रकार अभिलिखित किया –

"अर्जीदार को पुकारा गया जो अनुपस्थित पाया गया । अर्जीदार के काउंसेल ने यह बताया है कि वह अपना वकालतनामा वापस ले रहा है और इस संबंध में पृष्ठांकन किया गया । विद्वान् काउंसेल श्री तिरु कुमार द्वारा किए गए पृष्ठांकन को दृष्टिगत करते हुए जो अनुज्ञा पहले प्रदान की गई थी वह रद्द कर दी गई । प्रत्यर्थी भी अनुपस्थित पाया गया । प्रत्यर्थी के काउंसेल ने प्रत्यर्थी की ओर से पेश होते हुए बताया कि वह अभि. सा. 1 की प्रतिपरीक्षा कराए जाने के लिए तैयार नहीं है । अर्जीदार अर्थात् अभि. सा. 1 के न्यायालय में पेश होने तक मामले को पास-ओवर के अधीन रखा गया । अर्जीदार की ओर से कोई भी न्यायालय में पेश नहीं हुआ और काफी देर तक अर्जीदार की प्रतीक्षा की गई । अर्जीदार अर्थात् अभि. सा. 1 की न्यायालय में अनुपस्थिति को न्यायोचित नहीं कहा जा सकता । अभि. सा. 1 पहले ही अनियमित रूप से न्यायालय में पेश होता था और यह मामला व्यतिक्रम के आधार पर खारिज किया गया था । इसके पश्चात् आवेदन फाइल किए जाने पर यह मामला विलंब के साथ प्रत्यावर्तित किया गया । अब यह मामला अर्जीदार अर्थात् अभि. सा. 1 की प्रतिपरीक्षा के लिए लंबित है । अर्जीदार/अभि. सा. 1 की अनुपस्थिति के कारण मामले की

कार्यवाही की गति अत्यधिक प्रभावित हुई है । अर्जीदार/अभि. सा. 1 द्वारा मामला स्थगित कराए जाने और न्यायालय में पेश न होने के संबंध में पर्याप्त कारण नहीं दिए गए हैं । मामले को बनावटी रूप से स्थगित कराने की अनुमति नहीं दी जा सकती । प्रत्यर्थी के काउंसेल ने यह दलील दी है कि अर्जीदार जानबूझकर प्रतिपरीक्षा से बच रहा है और मामले को अनावश्यक लंबित रखने के लिए कई अधिवक्ता बदले हैं । अभिलेख का परिशीलन किया गया है । इसके पश्चात् आदेश पारित किया गया है । यह अर्जी व्यतिक्रम के आधार पर विस्तृत आदेश, जो अलग से संलग्न किया गया है, के साथ खारिज की जाती है । खर्चों के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

हस्ताक्षर – अपर सेशन न्यायाधीश,
कुटुंब न्यायालय, शिवगंगई ।"

(v) उक्त परिस्थितियों में इस मामले में के अपीलार्थी ने मूल अर्जी सं. 1/2016 को प्रत्यावर्तित करने के लिए अंतरिम आवेदन सं. 5/2019 फाइल किया जो व्यतिक्रम के कारण खारिज हो गया । यह प्रत्यावर्तन आवेदन 17 दिनों के विलंब से फाइल किया गया था । इसलिए विलंब में माफी हेतु आवेदन फाइल करने के लिए परिसीमा अधिनियम की धारा 5 का अवलंब लिया गया जिसके साथ प्रत्यावर्तन आवेदन भी फाइल किया गया । विचारण न्यायालय ने विलंब की माफी वाले आवेदन को मंजूर करने के पश्चात् गुणता के आधार पर प्रत्यावर्तन आवेदन विचार के लिए ग्रहण किया है ।

(vi) दोनों पक्षकारों को सुनने पर विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि पूर्व काउंसेल श्री तिरु कुमार के विरुद्ध अपीलार्थी की ओर से किया गया यह अभिकथन कि उन्होंने अपना वकालतनामा उसे बिना बताए वापस ले लिया है, कार्यवाहियों को लंबित करने की हेरा-फेरी दर्शाता है । अपीलार्थी जिसने जी. डब्ल्यू. ओ. पी. के माध्यम से अप्राप्तवय कन्या की अभिरक्षा की ईप्सा की

है और मामले की कार्यवाही को आगे बढ़ाने में कोई रुचि नहीं ली है जबकि इस मामले में 9 फरवरी, 2017 से विचारण की प्रक्रिया चलाई जा सकती थी, अत: मूल अर्जी व्यतिक्रम के आधार पर खारिज कर दी गई ।

(vii) अभिलेख से स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि तारीख 20 फरवरी, 2019 को याची ने शपथपत्र फाइल किया है जिसे प्रदर्श-11 के रूप में चिह्नांकित किया गया है । मामला अपीलार्थी की प्रतिपरीक्षा के लिए तारीख 2 अप्रैल, 2019 के लिए स्थगित कर दिया गया । अपीलार्थी उस तारीख को पेश नहीं हुआ । उसके काउंसेल ने न्यायालय के समक्ष यह निवेदन किया कि वह अपना वकालतनामा वापस ले रहा है ।

5. स्थिति कुछ भी हो, तथ्य यह सामने आता है कि इस मामले में के अपीलार्थी ने शिवगंगई न्यायालय के समक्ष फाइल की गई मूल अर्जी को कुटुंब न्यायालय, मदुरई को स्थानांतरित किए जाने के लिए वर्ष 2018 में प्रयास किया किंतु उसने वह आवेदन तारीख 3 जनवरी, 2019 को वापस ले लिया था । अत: जब मूल अर्जी व्यतिक्रम के कारण खारिज की गई तब न्यायालय के समक्ष पेश होने और अपनी प्रतिपरीक्षा कराने के लिए अपीलार्थी/अर्जीदार के लिए कोई अड़चन नहीं थी किंतु उसने ऐसा नहीं किया । अत:, विचारण न्यायालय ने इस मामले में के अपीलार्थी के आचरण को अर्थात् संवेदनशील प्रक्रम पर बारम्बार काउंसेल बदलना वह भी केवल तारीख लेने के लिए और व्यतिक्रम के कारण अर्जी खारिज करवाना और उसके पश्चात् प्रत्यावर्तन के लिए आवेदन फाइल करना, ध्यान में रखते हुए विचारण न्यायालय को प्रत्यावर्तन के लिए फाइल की गई अर्जी खारिज करनी पड़ी है क्योंकि इसमें कोई गुणता ही नहीं है, विचारण न्यायालय ने यह अवेक्षा की है कि अपीलार्थी को व्यवसाय से अधिवक्ता होने के कारण अपने व्यवसाय का अनुचित लाभ नहीं लेना चाहिए और कार्यवाहियों को विलंबित नहीं करना चाहिए । इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान दिलाया गया है कि न्यायालय को बिना सोचे-समझे अपीलार्थी को इस आधार पर छूट देते हुए मामला स्थगित नहीं कर सकता कि वह अधिवक्ता है ।

6. यह अपील विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों के विरुद्ध निम्न आधारों पर फाइल की गई है :–

(1) विद्वान् न्यायाधीश का आदेश विधि और तथ्यों के प्रतिकूल है ।

(2) विद्वान् न्यायाधीश यह देखने में असफल रहे हैं कि अधिवक्ता ने अर्जीदार को सूचित किए बिना अपना वकालतनामा वापस लिया है ।

(3) विद्वान् न्यायाधीश इस पर ध्यान नहीं दे सके कि वकालतनामा वापस लेने के पश्चात् अर्जीदार को सूचित नहीं किया गया है ।

(4) विद्वान् न्यायाधीश को, अर्जीदार को अधिवक्ता द्वारा वकालतनामा वापस लिए जाने के पश्चात्, नोटिस जारी करना चाहिए था ।

(5) विद्वान् न्यायाधीश ने इस पर भी विचार नहीं किया है कि अर्जी के प्रत्यावर्तन को मंजूर करने से प्रत्यर्थी पर कोई भी प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

(6) विद्वान् न्यायाधीश ने अर्जीदार को कोई भी अवसर दिए बिना आदेश पारित किया है जो नैसर्गिक न्याय के विरुद्ध है ।

7. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने प्रत्यर्थियों के आचरण से संबंधित न्यायालय के समक्ष लंबित पक्षकारों के बीच अनेक मुकदमे निर्दिष्ट किए हैं । इसी प्रकार प्रत्यर्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने भी इस मामले में के अपीलार्थी के साथ हुई बातचीत की जानकारी न्यायालय को दी है जिसे न्यायालय ने अभद्र और अश्लील माना है ।

8. इस न्यायालय को, इस तथ्य की जानकारी होने पर कि हमारे समक्ष प्रस्तुत की गई अपील का उद्देश्य यह परखना है कि क्या प्रत्यावर्तन की अर्जी खारिज करने वाला विचारण न्यायालय का आदेश

तथ्यों के समुचित मूल्यांकन के आधार पर पारित किया गया है या नहीं और वह न्यायोचित है या नहीं, तथ्यों तथा विधि की संवीक्षा भी करनी है ।

9. अपीलार्थी का मामला यह है कि इस मामले में के प्रत्यर्थी ने वर्ष 2015 में अपीलार्थी की अभिरक्षा से बच्चा ले लिया था और वह अपने माता-पिता के साथ इलियांकुडी में रह रही है और अब वह अध्यापिका के रूप में सेवा कर रही है । यह भी स्वीकृत तथ्य है कि पुत्री की आयु लगभग 11 वर्ष है और उसे मानसिक रोग है और उसका इलाज भी चल रहा है । इस पृष्ठभूमि में अपीलार्थी अर्थात् अप्राप्तवय बच्चे के पिता द्वारा वर्ष 2016 में मूल अर्जी संस्थित की गई है । तथापि, वह बच्चे को अपनी अभिरक्षा में लेने या उससे मुलाकात के अधिकार के लिए गंभीर रूप से प्रयास नहीं कर रहा है ।

10. इसके पूर्व इस न्यायालय ने इस मामले को प्रतिस्थापित करने के लिए अर्जी मंजूर की थी जिसे व्यतिक्रम के कारण खारिज कर दिया गया था जिसमें विचारण न्यायालय के तारीख 24 जनवरी, 2018 के आदेश के पैरा 3 में स्पष्ट रूप से यह कहा गया था कि विरोधी पक्षकार पेश नहीं हुआ है और इसी आदेश का अवलंब उच्च न्यायालय द्वारा उस समय लिया गया था जब उस आदेश को 2017 के पुनरीक्षण आवेदन सं. 2294 में चुनौती दी गई थी । सुविधा के लिए पूर्ववर्ती आदेश का प्रभावी भाग निम्न प्रकार है :–

> "3. मामले के तथ्यों को दोहराते हुए, आवेदक के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि वर्तमान आवेदक ने जो आवेदन फाइल किया है वह अवांछनीय है । विद्वान् न्यायाधीश को आवेदक की मौजूदगी पर बल दिए बिना आवेदन को नंबरीकृत करना चाहिए था । अत:, उन्होंने वर्तमान पुनरीक्षण आवेदन मंजूर किए जाने की प्रार्थना की है ।"

11. उक्त आदेश में उच्च न्यायालय द्वारा जो हस्तक्षेप किया गया है वह गुणता के आधार पर नहीं अपितु अपीलार्थी को यह अवसर दिए जाने के लिए किया गया है कि वह अपने मामले की पैरवी कर सके । किंतु

दुर्भाग्यवश जी. डब्ल्यू. ओ. पी. के प्रत्यास्थापन और गुणता के आधार पर मामले की पैरवी किए जाने का अवसर दिए जाने के पश्चात् भी अपीलार्थी ने इस अवसर को नहीं चुना है बल्कि वह मामले को लंबित किए जाने में लगा रहा है ।

12. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि 18 जनवरी, 2018 के पूर्व सुनवाई की लगभग चार तारीखों पर वह उपस्थित नहीं था जबकि अपीलार्थी न्यायालय में मौजूद था और इसीलिए अपीलार्थी को कार्यवाहियां लंबित किए जाने के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता । न्यायालय की सुविधा के लिए अपीलार्थी ने अपनी डायरी से टाइप करके न्यायालय के समक्ष तारीख 11 अक्तूबर, 2018 ; 22 अक्तूबर, 2018 ; 14 नवंबर, 2018 और 20 दिसंबर, 2018 से संबंधित सुनवाई के कुछ ब्यौरें प्रस्तुत किए हैं और ये वे तारीखें हैं जिन पर प्रत्यर्थी न्यायालय में पेश नहीं हुआ था और अपीलार्थी, जो न्यायालय में मौजूद था, जांच के लिए तैयार नहीं था और इस संबंध में विचारण न्यायालय द्वारा स्पष्ट रूप से आदेश किया गया है । वास्तव में, तारीख 14 नवंबर, 2018 को विचारण न्यायालय ने विशेष रूप से यह कथन किया है कि अर्जीदार जांच के लिए तैयार नहीं है । अर्जीदार को अंतिम रूप से जांच कराने के लिए तारीख 20 दिसंबर, 2018 तक का समय दिया गया था । इसके पश्चात् आगे तारीख स्थगित न किए जाने का आदेश किया गया । इस शर्त के बावजूद तारीख 20 दिसंबर, 2018 को मामला स्थगित किया गया और अपीलार्थी कार्यवाही आगे बढ़ाने के लिए तैयार नहीं था और इस संबंध में विचारण न्यायालय द्वारा निम्न आदेश पारित किया गया :–

> "अर्जीदार मौजूद है । प्रत्यर्थी को पुकारा गया जो अनुपस्थित है । अर्जीदार जांच के लिए तैयार नहीं है । बार-बार सुनवाई की तारीख दी जा रही है । जांच किए जाने के लिए तारीख 18 जनवरी, 2019 तक का समय अंतिम रूप से बढ़ाया जाता है ।"

13. तारीख 18 जनवरी, 2019 को इस मामले में के अपीलार्थी ने अपना काउंसेल बदला है और श्री टी. कुमार की सहायता लिए जाने हेतु न्यायालय से अनुज्ञा की ईप्सा की है । नए काउंसेल ने मामले की

कार्यवाही के लिए समय मांगा है और उनके निवेदन पर विचारण न्यायालय ने मामले को इस शर्त के साथ 20 फरवरी, 2019 के लिए स्थगित किया है कि अब आगे स्थगन की कोई तारीख नहीं दी जाएगी । तारीख 20 फरवरी, 2019 को दोनों पक्षकार मौजूद थे । अपीलार्थी की मुख्य परीक्षा अभि. सा. 12 के रूप में कराई गई । ग्यारह प्रदर्श चिह्नांकित किए गए । अभि. सा. 1 की प्रतिपरीक्षा कराए जाने के लिए मामले को तारीख 2 अप्रैल, 2019 तक के लिए स्थगित कर दिया गया । उक्त परिस्थिति में जब मामले की सुनवाई 2 अप्रैल, 2019 को की गई तब अर्जीदार अनुपस्थित था और इसीलिए मामला खारिज किए जाने का आदेश पारित किया गया । विचारण न्यायालय ने जी. डब्ल्यू. ओ. पी. खारिज करते समय उपरोक्त कारण अभिलिखित किया ।

14. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने इस न्यायालय के समक्ष यह दलील दी कि अपीलार्थी बच्चे को अपनी अभिरक्षा में लेने का हकदार है और उसकी अर्जी अप्राप्तवय कन्या के हित के लिए प्रत्यावर्तित की जानी चाहिए ।

15. पक्षकारों के बीच अनेक मामलों में किए गए अभिवाकों और एस. एम. एस. के माध्यम से फोन पर भेजे गए सभी संदेशों से अपीलार्थी की दुर्भावना का पता चलता है और उससे संबंधित संपूर्ण दस्तावेजों का परिशीलन करने के पश्चात् यह अकाट्य निष्कर्ष निकलता है कि अपीलार्थी 11 वर्ष की कन्या का संरक्षक बनने के लिए सक्षम नहीं है । अतः, अप्राप्तवय बच्चे के हित में भी न्यायालय का यह मत है कि अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई मूल अर्जी खारिज की जानी चाहिए वरना प्रत्यर्थी और अप्राप्तवय बच्चे के जीवन में कठिनाई पैदा होना आवश्यक है । इस प्रकार सिविल प्रकीर्ण अपील खारिज की जाती है । खर्चों के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

अस.

रुकनुद्दीन वल्द अकबर

बनाम

मैसर्स फर्म आसनदास लालचंद और अन्य

(2003 की एस. बी. सिविल द्वितीय अपील सं. 157)

तारीख 15 नवंबर, 2021

न्यायमूर्ति सतीश कुमार शर्मा

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 [सपठित राजस्थान परिसर अधिनियम, 1964 की धारा 13] – अपील – मालिक द्वारा दुकान किराए पर दिया जाना – मालिक द्वारा सद्भाविक आवश्यकता होने पर दुकान को किराएदार से मुक्त कराने की ईप्सा करना – किराएदार द्वारा दुकान खाली नहीं करना – बेदखली के लिए वाद फाइल किया जाना – यदि न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि दुकान मालिक को दुकान खाली कराने की सद्भाविक आवश्यकता है तो न्यायालय, किराएदार से दुकान खाली करने की डिक्री पारित कर सकता है ।

संक्षेप में, मामले के तथ्य ये हैं कि अपीलार्थी-वादी ने प्रत्यर्थी-प्रतिवादी को दिनांक 2.9.73 को किराए पर दी गई दुकान की बेदखली के लिए दावा दायर किया । विचारण के दौरान दावे में संशोधन किए गए । अंतिम तौर पर संशोधित वादपत्र के अनुसार सारतः वादी का अभिकथन रहा है कि दुकान किराए पर देते समय अपीलार्थी-वादी ने प्रत्यर्थी-प्रतिवादी से छः हजार रुपए कर्जा लिया था तथा दोनों पक्षों में यह तय हुआ कि कर्जा चुकता होने पर प्रत्यर्थी-प्रतिवादी दुकान खाली कर देगा, लेकिन किराए की राशि में कर्ज राशि के समायोजन होने के बावजूद प्रत्यर्थी-प्रतिवादी ने दुकान खाली नहीं की । उसने दिनांक 7.11.79 तक छः माह से अधिक अवधि के किराए अदायगी का व्यक्तिक्रम कर दिया । दिनांक 12.2.83 को अपीलार्थी-वादी को पता चला कि विवादित दुकान असुरक्षित हो गई है जिसकी मरम्मत कराया

जाना जरूरी है । अपीलार्थी-वादी को स्वयं एवं अपने परिवार के लिए लोहे का सामान बेचने हेतु दुकान की उचित एवं सद्भाविक आवश्यकता है । अपीलार्थी-वादी के पास अन्य कोई दुकान नहीं है, जबकि प्रत्यर्थी-प्रतिवादी के पास विवादित दुकान के नजदीक ही दो दुकानें हैं, जिनमें वह जूते बेचने का काम करता है । दुकान खाली नहीं होने पर तुलनात्मक रूप से अपीलार्थी-वादी को अत्यधिक कठिनाई होगी, अतः उसके पक्ष में बेदखली की डिक्री पारित की जाए । न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – वादी/मकान मालिक के पक्ष में किराएशुदा परिसर की उचित एवं सद्भाविक आवश्यकता साबित होने के संदर्भ में, विद्वान् अधिवक्ता अपीलार्थी-वादी की दलीलें हैं कि स्वीकृत रूप से अपीलार्थी-वादी वादग्रस्त दुकान के पिछवाड़े में स्थित अपने कमरे में लोहे के सामान का व्यवसाय करता आ रहा है । उसके पास अपने व्यवसाय के लिए इस पीछे के कमरे के अलावा वादग्रस्त दुकान के अतिरिक्त अन्य कोई उपयुक्त स्थान उपलब्ध नहीं है अर्थात् अपीलार्थी-वादी की सद्भाविक आवश्यकता निर्विवाद रूप से साबित है । प्रारम्भ में अपने दावे में आवश्यकता का आधार नहीं जोड़े जाने का उचित स्पष्टीकरण भी अपीलार्थी-वादी ने प्रस्तुत किया है कि पहले मार्केट नहीं चलता था, लेकिन वर्षों बाद मार्केट चलने लगा तो उसे अपनी इस एकमात्र दुकान की अपने व्यवसाय के लिए आवश्यकता पड़ी अर्थात् उसका स्पष्टीकरण बनावटी या दुर्भावनापूर्ण नहीं है । इस संशोधन को प्रत्यर्थी-प्रतिवादी ने चुनौती भी नहीं दी है । अपीलार्थी-वादी अपनी आवश्यकता के संदर्भ में सर्वोत्तम निर्णायक है । प्रत्यर्थी-प्रतिवादी को यह कहने का अधिकार नहीं है कि उसे पहले की भांति दुकान के पिछवाड़े स्थित अपनी जगह में व्यवसाय करना चाहिए और बाजार में स्थित अपनी इस एकमात्र दुकान में व्यवसाय करना चाहिए और बाजार में स्थित अपनी इस एकमात्र दुकान में व्यवसाय नहीं करना चाहिए । अपीलार्थी पहले से जो व्यवसाय कर रहा है, वही व्यवसाय उसे वादग्रस्त दुकान में करना है अर्थात् अतिरिक्त पूंजी की जरूरत नहीं है । अन्यथा भी अतिरिक्त पूंजी बैंक से ऋण लेकर जुटाई जा सकती है । इन तमाम सुसंगत एवं निर्णायक

तथ्यों पर दोनों ही न्यायालयों ने सही तरीके से विचार नहीं किया है । दोनों न्यायालयों का निष्कर्ष गंभीर रूप से त्रुटिपूर्ण है । अपीलार्थी-वादी के पक्ष में सद्भाविक आवश्यकता नहीं माने जाने में गंभीर त्रुटि कारित की गई है । अपीलार्थी-वादी के पास वैकल्पिक उपयुक्त परिसर नहीं होने के कारण तुलनात्मक रूप से अधिक असुविधा होने का तथ्य भी अपीलार्थी-वादी के पक्ष में है । अपीलार्थी-वादी का दावा विरुद्ध प्रत्यर्थी-प्रत्यवादी डिक्री किए जाने योग्य है । विद्वान् विचारण न्यायालय तथा विद्वान् प्रथम अपीलीय न्यायालय ने अपीलार्थी-वादी की सद्भाविक आवश्यकता इस आधार पर भी नहीं मानी है कि उसके प्रारम्भ में भी दुकान चलाने के लिए पूंजी नहीं थी और अब भी जमापूंजी नहीं है लेकिन दोनों न्यायालयों ने इस बात पर गौर नहीं किया है कि अपीलार्थी-वादी वादग्रस्त दुकान के पिछवाड़े स्थित कमरे में लोहे के सामान का व्यवसाय कर रहा है और वही व्यवसाय वह बाजार में स्थित वादग्रस्त दुकान में करना चाहता है जिसके लिए प्रथमतः अतिरिक्त पूंजी की आवश्यकता नहीं है । बाकी सिर्फ अतिरिक्त पूंजी नहीं होने मात्र से अपीलार्थी-वादी को यह कहा जाना उचित व न्यायपूर्ण नहीं है कि उसे वादग्रस्त दुकान के पिछवाड़े के कमरे में अपना व्यवसाय करना चाहिए और वही काम उसे बाजार में स्थित अपनी दुकान में नहीं करना चाहिए । विद्वान् अधिवक्ता प्रत्यर्थी-प्रतिवादी की दलीलों के अनुसार हो सकता है कि किराएदारी के 48 सालों की लम्बी अवधि में अपीलार्थी-वादी स्वयं व्यवसाय करने में पहले की भांति शारीरिक रूप से सक्षम नहीं रह गया हो, लेकिन उसने स्पष्ट तौर पर कहा है कि वह इसी व्यवसाय से अपने परिवार का पालन-पोषण करता आ रहा है । ऐसी दशा में सिर्फ उसके वृद्ध और बीमार हो जाने से उसकी उचित एवं सद्भाविक आवश्यकता समाप्त नहीं हो जाती है । उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दोनों पक्षों के अभिवचनों और दोनों पक्षों की साक्ष्य के आधार पर अपीलार्थी-वादी के पक्ष में वादग्रस्त दुकान की उचित एवं सद्भाविक आवश्यकता का तथ्य पूरी तरह साबित है । अपीलार्थी-वादी के पास इस दुकान के अलावा अन्य कोई उपयुक्त परिसर अपने व्यवसाय के लिए नहीं है । वादग्रस्त दुकान के पड़ोस में ही प्रत्यर्थी-प्रतिवादी और उसके परिवार के पास अन्य

दो दुकानें हैं, जिनमें उसके पिता व अन्य परिवारजन व्यवसाय कर रहे हैं, अन्यथा भी प्रत्यर्थी-प्रतिवादी अन्यत्र दुकान लेकर अपना व्यवसाय कर सकता है । अतः वादग्रस्त दुकान की बेदखली नहीं होने की दशा में अपीलार्थी-वादी को तुलनात्मक रूप से अधिक असुविधा होना अवश्यंभावी है । किराएशुदा परिसर का आंशिक निष्कासन संभव नहीं होने के बाबत् कोई विवाद नहीं है । इस तरह विद्वान् विचारण न्यायालय तथा विद्वान् प्रथम अपीलीय न्यायालय के निष्कर्ष गंभीर रूप से त्रुटिपूर्ण एवं साक्ष्य के विपरीत की श्रेणी में आते हैं जो स्थिर रहने योग्य नहीं है, बल्कि दावा वादी डिक्री होने योग्य है । (पैरा 10, 18, 19 और 20)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2010] 2010 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 7020 : **नगर समिति, होशियारपुर** बनाम **पंजाब राज्य विद्युत बोर्ड और अन्य** ; 7

[2010] (2010) 15 एस. सी. सी. 155 : **संसार चंद** बनाम **स्वामी विवेकानंद आदर्श विद्या मंदिर** ; 8

[2001] (2001) 5 एस. सी. सी. 705 : **दीना नाथ** बनाम **पूरन मल** ; 11

[2000] ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 534 : **रागवेंद्र कुमार** बनाम **फर्म प्रेम मशीनरी एण्ड कंपनी** ; 10

[1999] (1999) 6 एस. सी. सी. 222 : **शिव सरूप गुप्ता** बनाम **डाक्टर महेश चंद गुप्ता** ; 11

[1999] (1999) 7 एस. सी. सी. 275 : **टी. शिवासुब्रमणियम् और अन्य** बनाम **कासीनाथ पुजारी और अन्य** ; 11

[1999] (1999) 2 एस. सी. सी. 471 : **डायनोबा भैरव शेमाडे** बनाम **मरोती भैरव मरनोर** ; 8, 9

[1996] (1996) 5 एस. सी. सी. 353 :
श्रीमती प्रतिवा देवी बनाम **टी. वी. कृष्णन्** ; 10

[1988] (1988) 3 एस. सी. सी. 131 :
रामदास बनाम **ईश्वर चन्दर** ; 11

[1986] (1986) 4 एस. सी. सी. 736 :
अमरजीत सिंह बनाम **श्रीमती खातून क्यूमारेन** । 11

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2003 की एस. बी. सिविल द्वितीय सं. 157.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी/अपीलार्थियों की ओर से श्री सैलेश प्रकाश शर्मा

प्रत्यर्थी/प्रत्यर्थियों की ओर से श्री रिनेश गुप्ता और श्री तनय जैन

न्यायमूर्ति सतीश कुमार शर्मा – सुसंगत तथ्य इस प्रकार है कि अपीलार्थी-वादी ने प्रत्यर्थी-प्रतिवादी को दिनांक 2.9.73 को किराए पर दी गई दुकान की बेदखली के लिए दावा दायर किया । विचारण के दौरान दावे में संशोधन किए गए । अंतिम तौर पर संशोधित वादपत्र के अनुसार सारतः वादी का अभिकथन रहा है कि दुकान किराए पर देते समय अपीलार्थी-वादी ने प्रत्यर्थी-प्रतिवादी से छः हजार रुपए कर्जा लिया था तथा दोनों पक्षों में यह तय हुआ कि कर्जा चुकता होने पर प्रत्यर्थी-प्रतिवादी दुकान खाली कर देगा, लेकिन किराए की राशि में कर्ज राशि के समायोजन होने के बावजूद प्रत्यर्थी-प्रतिवादी ने दुकान खाली नहीं की । उसने दिनांक 7.11.79 तक छः माह से अधिक अवधि के किराए अदायगी का व्यक्तिक्रम कर दिया । दिनांक 12.2.83 को अपीलार्थी-वादी को पता चला कि विवादित दुकान असुरक्षित हो गई है जिसकी मरम्मत कराया जाना जरूरी है । अपीलार्थी-वादी को स्वयं एवं अपने परिवार के लिए लोहे का सामान बेचने हेतु दुकान की उचित एवं सद्भाविक आवश्यकता है । अपीलार्थी-वादी के पास अन्य कोई दुकान नहीं है, जबकि प्रत्यर्थी-प्रतिवादी के पास विवादित दुकान के नजदीक ही दो दुकानें हैं, जिनमें वह जूते बेचने का काम करता है । दुकान खाली नहीं

होने पर तुलनात्मक रूप से अपीलार्थी-वादी को अत्यधिक कठिनाई होगी, अतः उसके पक्ष में बेदखली की डिक्री पारित की जाए ।

2. प्रत्यर्थी-प्रतिवादी ने इस आशय का जबाव दावा पेश किया कि वादग्रस्त दुकान किराए पर लेते समय प्रत्यर्थी-प्रतिवादी से अपीलार्थी-वादी ने छः हजार रुपए एडवांस लिया एवं इकरारनामे में तय हुआ कि उक्त एडवांस राशि में से 65/- रुपए प्रतिमाह की राशि कटेगी तथा शेष 50/- रुपए अलग से किराया दिया जावेगा । दिनांक 30.4.81 तक एडवांस राशि का भुगतान हो चुका है । अपीलार्थी-वादी द्वारा शेष राशि नहीं लेने पर प्रत्यर्थी-प्रतिवादी ने धारा 19ए के अन्तर्गत न्यायालय के समक्ष बकाया राशि जमा करा दी है । अपीलार्थी-वादी को दुकान की कोई सद्भाविक आवश्यकता नहीं है । मरम्मत के लिए दुकान खाली कराने का आधार भी बहाना मात्र है । दुकान खाली होने पर प्रत्यर्थी-प्रतिवादी को ज्यादा तकलीफ होगी क्योंकि उसके पास अन्य कोई रोजगार का साधन नहीं है । दावा खारिज किए जाने की प्रार्थना की ।

3. उपरोक्त अभिवचनों के आधार पर निम्न विवाद्यकों की रचना की गई :–

1. क्या वादग्रस्त दुकान प्रतिवादी ने किराए पर ली हुई है ?

2. क्या दुकान किराए पर देते समय 6,000/- रुपए कर्ज लिया गया था, और प्रतिवादी से मुआयदा हुआ था कि कर्ज अदायगी वादी द्वारा कर दिए जाने पर प्रतिवादी दुकान खाली कर वादी को संभाल दी जाएगी, इसका वाद पर क्या प्रभाव है ?

3. क्या कर्ज की अदायगी हो जाने से वादी दुकान खाली करा लेने का अधिकारी है ?

4. क्या प्रतिवादी ने दिनांक 7.11.79 से किराया अदा न करके कानूनी डिफाल्ट कर दिए हैं ?

5. क्या वाद कब्जे के लिए दुकान की कीमत 25,000/- रुपए पर होना चाहिए, इसलिए श्रवणाधिकार का नहीं ?

6. क्या धारा 13, राजस्थान परिसर अधिनियम के अन्तर्गत वाद नहीं आने से वाद इन्खलाय है तो चलने योग्य नहीं है ?

6ए. आया वादपत्र की मद नं. 3ब में वर्णित आधार पर विवादित दुकान असुरक्षित हो गई है तथा इस आधार पर वादी इन्खलाय की डिक्री प्राप्त करने का अधिकारी है ?

6बी. क्या वादी को स्वयं एवं अपने परिवार के लिए वादग्रस्त परिसर की युक्तियुक्त व सद्भाविक आवश्यकता है ?

6सी. क्या वादग्रस्त दुकान खाली न होने की सूरत में प्रतिवादी की अपेक्षा वादी को अपेक्षाकृत अधिक कठिनाई होगी ?

6डी. आया वादग्रस्त दुकान का आंशिक निष्कासन संभव है ?

7. क्या प्रतिवादी विशेष हर्जा 500/- रुपए पाने का अधिकारी है ?

8. सहायता ।

4. दोनों पक्षों की साक्ष्य लेखबद्ध करने के उपरान्त विचारण न्यायालय ने वादी के पक्ष में बेदखली के आधार साबित नहीं माने और निर्णय व डिक्री दिनांक 5.4.1995 द्वारा वादी का दावा खारिज कर दिया । अपीलार्थी-वादी ने विचारण न्यायालय के निर्णय व डिक्री के खिलाफ प्रथम अपील प्रस्तुत की जो प्रथम अपीलीय न्यायालय अपर जिला न्यायाधीश क्रम-1, कोटा द्वारा निर्णय व डिक्री दिनांक 9.1.2002 द्वारा खारिज कर दी गई । अपीलार्थी-वादी ने उपरोक्त निर्णयों व डिक्री के खिलाफ यह द्वितीय अपील प्रस्तुत की है ।

5. इस न्यायालय द्वारा यह अपील निम्न विधिक प्रश्न पर सुनवाई हेतु ग्रहण की गई :–

> "क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, वादी ने किराया परिसरों की अपनी सद्भाविक आवश्यकता को साबित किया है या नहीं ?"

6. दोनों पक्षों की बहस सुनी गई, पत्रावली एवं प्रत्यर्थी-प्रतिवादी की ओर से प्रस्तुत लिखित बहस का अवलोकन किया ।

7. विद्वान् अधिवक्ता अपीलार्थी-वादी की दलीलें हैं कि यद्यपि इस मामले में विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी-वादी का दावा खारिज किया है तथा प्रथम अपीलीय न्यायालय ने उसकी अपील भी खारिज की

है, लेकिन यह द्वितीय अपील विधिक प्रश्न पर सुनवाई के लिए ग्रहण की जा चुकी है । यदि उक्त दोनों न्यायालयों के निष्कर्ष त्रुटिपूर्ण, साक्ष्य के विपरीत हैं तो द्वितीय अपील में ऐसी गंभीर विधिक त्रुटि को सुधारने में कोई कानूनी बाधा नहीं है । उन्होंने अपने समर्थन में **नगर समिति, होशियारपुर** बनाम **पंजाब राज्य विद्युत बोर्ड और अन्य**[1] पेश किया ।

8. दूसरी ओर विद्वान् अधिवक्ता प्रत्यर्थी-प्रतिवादी की दलीलें हैं कि विद्वान् विचारण न्यायालय ने दोनों पक्षों के साक्ष्य का मूल्याकन करते हुए दावा खारिज किया है । प्रथम अपीलीय न्यायालय ने भी विचारण न्यायालय के निष्कर्ष में कोई त्रुटि नहीं पाई है । वस्तुतः यह द्वितीय अपील तथ्यात्मक निष्कर्षों के विरुद्ध पेश की गई है, जिन्हें द्वितीय अपील में चुनौती दिया जाना अनुज्ञेय नहीं है । उन्होंने **डायनोबा भैरव शेमाडे** बनाम **मरोती भैरव मारनोर**[2] और **संसार चंद** बनाम **स्वामी विवेकानंद आदर्श विद्या मंदिर**[3] के न्यायिक दृष्टान्तों का अवलम्ब लिया ।

9. उपरोक्त दलीलों के संदर्भ में उक्त न्यायिक दृष्टान्तों का अवलोकन करने पर यह सुस्थापित विधिक स्थिति सामने आती है कि धारा 100 दीवानी प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत द्वितीय अपील तभी अनुज्ञेय है जब मामले में कोई तात्विक विधिक प्रश्न (substantial Question of law) उत्पन्न होता हो, लेकिन स्वयं प्रत्यर्थी-प्रतिवादी की ओर से संदर्भित न्यायिक दृष्टान्त **डायनोबा भैरव शेमाडे** बनाम **मरोती भैरव मारनोर**[2] में प्रतिपादित विधिक स्थिति के अनुरूप यदि विचारण न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय के समान निष्कर्ष गंभीर रूप से त्रुटिपूर्ण (absolutely perverse) अथवा साक्ष्य के विपरीत (bereft of evidence) है तो ऐसे निष्कर्ष द्वितीय अपील में स्थिर रखे जाने योग्य नहीं है ।

10. वादी/मकान मालिक के पक्ष में किराएशुदा परिसर की उचित एवं सद्भाविक आवश्यकता साबित होने के संदर्भ में, विद्वान् अधिवक्ता

---

[1] 2010 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 7020.

[2] (1999) 2 एस. सी. सी. 471.

[3] (2010) 15 एस. सी. सी. 155.

अपीलार्थी-वादी की दलीलें हैं कि स्वीकृत रूप से अपीलार्थी-वादी वादग्रस्त दुकान के पिछवाड़े में स्थित अपने कमरे में लोहे के सामान का व्यवसाय करता आ रहा है । उसके पास अपने व्यवसाय के लिए इस पीछे के कमरे के अलावा वादग्रस्त दुकान के अतिरिक्त अन्य कोई उपयुक्त स्थान उपलब्ध नहीं है अर्थात् अपीलार्थी-वादी की सद्भाविक आवश्यकता निर्विवाद रूप से साबित है । प्रारम्भ में अपने दावे में आवश्यकता का आधार नहीं जोड़े जाने का उचित स्पष्टीकरण भी अपीलार्थी-वादी ने प्रस्तुत किया है कि पहले मार्केट नहीं चलता था, लेकिन वर्षों बाद मार्केट चलने लगा तो उसे अपनी इस एकमात्र दुकान की अपने व्यवसाय के लिए आवश्यकता पड़ी अर्थात् उसका स्पष्टीकरण बनावटी या दुर्भावनापूर्ण नहीं है । इस संशोधन को प्रत्यर्थी-प्रतिवादी ने चुनौती भी नहीं दी है । अपीलार्थी-वादी अपनी आवश्यकता के संदर्भ में सर्वोत्तम निर्णायक है । प्रत्यर्थी-प्रतिवादी को यह कहने का अधिकार नहीं है कि उसे पहले की भांति दुकान के पिछवाड़े स्थित अपनी जगह में व्यवसाय करना चाहिए और बाजार में स्थित अपनी इस एकमात्र दुकान में व्यवसाय करना चाहिए और बाजार में स्थित अपनी इस एकमात्र दुकान में व्यवसाय नहीं करना चाहिए । अपीलार्थी पहले से जो व्यवसाय कर रहा है, वही व्यवसाय उसे वादग्रस्त दुकान में करना है अर्थात् अतिरिक्त पूंजी की जरूरत नहीं है । अन्यथा भी अतिरिक्त पूंजी बैंक से ऋण लेकर जुटाई जा सकती है । इन तमाम सुसंगत एवं निर्णायक तथ्यों पर दोनों ही न्यायालयों ने सही तरीके से विचार नहीं किया है । दोनों न्यायालयों का निष्कर्ष गंभीर रूप से त्रुटिपूर्ण है । अपीलार्थी-वादी के पक्ष में सद्भाविक आवश्यकता नहीं माने जाने में गंभीर त्रुटि कारित की गई है । अपीलार्थी-वादी के पास वैकल्पिक उपयुक्त परिसर नहीं होने के कारण तुलनात्मक रूप से अधिक असुविधा होने का तथ्य भी अपीलार्थी-वादी के पक्ष में है । अपीलार्थी-वादी का दावा विरुद्ध प्रत्यर्थी-प्रतिवादी डिक्री किए जाने योग्य है । उन्होंने अपने समर्थन में निम्न न्यायिक दृष्टान्त पेश किए –

1. **श्रीमती प्रतिवा देवी** बनाम **टी. वी. कृष्णन**[1]

---

[1] (1996) 5 एस. सी. सी. 353.

2. **रागवेंद्र कुमार** बनाम **फर्म प्रेम मशीनरी एण्ड कंपनी**[1]

11. विद्वान् अधिवक्ता प्रत्यर्थी-प्रतिवादी की दलीलें हैं कि वादी-मकान मालिक सिर्फ किराएशुदा परिसर की इच्छा अथवा लालसा मात्र के आधार पर बेदखली डिक्री पाने का अधिकारी नहीं है । उसके द्वारा उचित और सद्भाविक आवश्यकता साबित करना आवश्यकता है । इस मामले में अपीलार्थी-वादी ने प्रारम्भ में अपनी आवश्यकता का आधार नहीं लिया है, बल्कि दौराने दावा यह आधार दावे में संशोधन के जरिए जोड़ा गया है । अपीलार्थी-वादी वादग्रस्त दुकान के पिछवाड़े स्थित कमरे में इस दुकान को किराए पर देने से पहले ही लोहे के सामान का व्यवसाय करता आ रहा है एवं आज भी वह जगह उसके पास उपलब्ध है जिसमें वह अपना व्यवसाय जारी रख सकता है । उसके व्यवसाय में कोई वृद्धि नहीं हुई है । उसके पास दुकान में व्यवसाय करने के लिए जमापूंजी भी नहीं है । उनका यह भी कहना है कि अपीलार्थी-वादी वृद्ध और बीमार है तथा अब वह स्वयं दुकान चलाने में सक्षम नहीं रह गया है तथा अपने परिवार के लोगों द्वारा व्यवसाय करने के लिए दुकान की आवश्यकता होने की पुष्टि उसने अपने बयानों में नहीं की है । इन तथ्यों के रहते विद्वान् विचारण न्यायालय ने वादी की सद्भाविक आवश्यकता साबित नहीं मानने में कोई गलती नहीं की है । विद्वान् प्रथम अपीलीय न्यायालय ने भी विचारण न्यायालय के निष्कर्ष में कोई त्रुटि नहीं पाई है । वादग्रस्त दुकान के पास स्थित अन्य दुकानें प्रत्यर्थी-प्रतिवादी की नहीं हैं, बल्कि प्रत्यर्थी-प्रतिवादी के पिता एवं अन्य दुकानें प्रत्यर्थी-प्रतिवादी नए किराएदारी कानून के तहत निर्धारित बढ़ा हुआ किराया अदा करता आ रहा है । यह द्वितीय अपील निराधार है । उन्होंने अपने समर्थन में निम्न न्यायिक दृष्टान्त पेश किए –

1. **अमरजीत सिंह** बनाम **श्रीमती खातून क्यूमारेन**[2]

2. **रामदास** बनाम **ईश्वर चन्दर**[3]

---

[1] ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 534.

[2] (1986) 4 एस. सी. सी. 736.

[3] (1988) 3 एस. सी. सी. 131.

3. **दीना नाथ** बनाम **पूरन मल**[1]

4. **शिव सरूप गुप्ता** बनाम **डाक्टर महेश चंद गुप्ता**[2] और

5. **टी. शिवासुब्रमणियम् और अन्य** बनाम **कासीनाथ पुजारी और अन्य**[3]

12. उपरोक्त दलीलों के संदर्भ में प्रस्तुत न्यायिक दृष्टान्तों का अवलोकन करने पर यह सुस्थापित विधिक स्थिति सामने आती है कि किराएशुदा परिसर से किराएदार की बेदखली हेतु वादी को किराएशुदा परिसर की उचित एवं सद्भाविक आवश्यकता साबित करना आवश्यक है । उसकी इच्छा अथवा लालसा मात्र सद्भाविक आवश्यकता की श्रेणी में नहीं आती है, लेकिन वादी स्वयं अपनी आवश्यकता का सर्वोत्तम निर्णायक है । न्यायालय को दोनों पक्षों की साक्ष्य के आधार पर यह तय करना होता है कि क्या वास्तव में मकान मालिक द्वारा बताई गई आवश्यकता सद्भाविक है अथवा सिर्फ बहाना मात्र अथवा बनावटी है ।

13. उपरोक्त विधिक स्थिति की रोशनी में दोनों पक्षों के अभिवचनों एवं दोनों पक्षों की साक्ष्य से इस हद तक निर्विवादित स्थिति सामने आती है कि अपीलार्थी-वादी से वादग्रस्त प्रत्यर्थी-प्रतिवादी ने वर्ष 1973 में किराए पर ली । अपीलार्थी-वादी किराएशुदा दुकान के पिछवाड़े में स्थित अपने कमरे में लोहे के सामान का व्यवसाय करता है । उसके पास इस पिछवाड़े स्थित कमरे के सामने बाजार में स्थित वादग्रस्त दुकान के अलावा अपने व्यवसाय के लिए अन्य कोई उपयुक्त परिसर उपलब्ध नहीं है ।

14. यह सही है कि वादी ने प्रारम्भ में अपने वादपत्र में किराएशुदा परिसर की सद्भाविक आवश्यकता का आधार नहीं लिया है और उसने यह आधार दावा दायर करने के कई वर्ष पश्चात् दावे में संशोधन के जरिए जोड़ा है, जिसे प्रत्यर्थी-प्रतिवादी के द्वारा कोई चुनौती नहीं दी गई है । अपीलार्थी-वादी ने इस संदर्भ में स्पष्टीकरण देते हुए बताया है कि पहले

---

[1] (2001) 5 एस. सी. सी. 705.

[2] (1999) 6 एस. सी. सी. 222.

[3] (1999) 7 एस. सी. सी. 275.

मार्केट नहीं चलता था, इसलिए उसने यह दुकान किराए पर दे दी और स्वयं उसके पिछवाड़े स्थित कमरे में व्यवसाय करता रहा । चूंकि प्रत्यर्थी-प्रतिवादी के पास अपीलार्थी-वादी की यह दुकान 48 वर्षों से किराए पर है । वर्ष 1973 के बाद के वर्षों में बाजार विकसित होने का कथन मिथ्या, अस्वाभाविक बनावटी ठहराए जाने योग्य नहीं है । ऐसी स्थिति में अपीलार्थी-वादी द्वारा दावा दायरी के वर्षों बाद दावे में संशोधन के जरिए सद्भाविक आवश्यकता का आधार जोड़े जाने में उसकी कोई दुर्भावना प्रकट नहीं होती है, लेकिन दोनों न्यायालयों ने इस पहलू को कोई महत्व नहीं दिया है ।

15. विद्वान् विचारण न्यायालय ने तथा प्रथम अपीलीय न्यायालय ने अपीलार्थी-वादी की सद्भाविक आवश्यकता को इस आधार पर नहीं माना है कि उसने उपने बयानों में स्वयं की आवश्यकता होने का कथन नहीं किया है ।

16. अपीलार्थी-वादी ने अपने अभिवचनों में वादग्रस्त दुकान की स्वयं और अपने परिवार के सदस्यों के लिए आवश्यकता बताई है । उसने अपने सशपथ बयानों में अपने परिवारजन के व्यवसाय के लिए आवश्यकता का कथन नहीं किया है, लेकिन अपनी प्रतिपरीक्षा में स्पष्ट तौर पर कहा है कि वह इसी दुकान से अपने परिवार का पालन-पोषण करता है अर्थात् ऐसा नहीं है कि अपीलार्थी-वादी अपने अभिवचनों से मुकर गया है अथवा उसे अपने परिवार के पालन-पोषण के लिए इस दुकान की आवश्यकता नहीं रही है । ऐसी स्थिति में सिर्फ विशिष्ट तौर पर अपने परिजनों के लिए दुकान की आवश्यकता नहीं माना जाना त्रुटिपूर्ण है, विशेषकर जब निर्विवाद रूप से अपीलार्थी-वादी के पास अपने तथा अपने परिवार के व्यवसाय के लिए वादग्रस्त दुकान के अलावा अन्य कोई उपयुक्त स्थान उपलब्ध नहीं है ।

17. वादी अपनी आवश्यकता के संदर्भ में एकमात्र सर्वोत्तम निर्णायक है । उसने अपने व्यवसाय के लिए वादग्रस्त दुकान की आवश्यकता होने की अखण्डनीय रूप से पुष्टि की है । वर्तमान में, बाजार में स्थित इस दुकान के पिछवाड़े का कमरा निश्चित रूप से बाजार के विकसित होने के बाद उपयुक्त माने जाने योग्य नहीं है ।

प्रत्यर्थी-प्रतिवादी को यह कहने का अधिकार नहीं है कि उसे पहले की भांति दुकान के पिछवाड़े स्थित कमरे में व्यवसाय करते रहना चाहिए अथवा अपने व्यवसाय के लिए बाजार में स्थित अपनी दुकान की आवश्यकता नहीं बतानी चाहिए, लेकिन दोनों ही न्यायालयों ने इस महत्वपूर्ण रूप से सुसंगत एवं निर्णायक पहलू पर विचार नहीं किया है ।

18. विद्वान् विचारण न्यायालय तथा विद्वान् प्रथम अपीलीय न्यायालय ने अपीलार्थी-वादी की सद्भाविक आवश्यकता इस आधार पर भी नहीं मानी है कि उसके प्रारम्भ में भी दुकान चलाने के लिए पूंजी नहीं थी और अब भी जमापूंजी नहीं है लेकिन दोनों न्यायालयों ने इस बात पर गौर नहीं किया है कि अपीलार्थी-वादी वादग्रस्त दुकान के पिछवाड़े स्थित कमरे में लोहे के सामान का व्यवसाय कर रहा है और वही व्यवसाय वह बाजार में स्थित वादग्रस्त दुकान में करना चाहता है जिसके लिए प्रथमतः अतिरिक्त पूंजी की आवश्यकता नहीं है । बाकी सिर्फ अतिरिक्त पूंजी नहीं होने मात्र से अपीलार्थी-वादी को यह कहा जाना उचित व न्यायपूर्ण नहीं है कि उसे वादग्रस्त दुकान के पिछवाड़े के कमरे में अपना व्यवसाय करना चाहिए और वही काम उसे बाजार में स्थित अपनी दुकान में नहीं करना चाहिए ।

19. विद्वान् अधिवक्ता प्रत्यर्थी-प्रतिवादी की दलीलों के अनुसार हो सकता है कि किराएदारी के 48 सालों की लम्बी अवधि में अपीलार्थी-वादी स्वयं व्यवसाय करने में पहले की भांति शारीरिक रूप से सक्षम नहीं रह गया हो, लेकिन उसने स्पष्ट तौर पर कहा है कि वह इसी व्यवसाय से अपने परिवार का पालन-पोषण करता आ रहा है । ऐसी दशा में सिर्फ उसके वृद्ध और बीमार हो जाने से उसकी उचित एवं सद्भाविक आवश्यकता समाप्त नहीं हो जाती है ।

20. उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दोनों पक्षों के अभिवचनों और दोनों पक्षों की साक्ष्य के आधार पर अपीलार्थी-वादी के पक्ष में वादग्रस्त दुकान की उचित एवं सद्भाविक आवश्यकता का तथ्य पूरी तरह साबित है । अपीलार्थी-वादी के पास इस दुकान के अलावा अन्य कोई उपयुक्त परिसर अपने व्यवसाय के लिए नहीं है । वादग्रस्त दुकान के

पड़ोस में ही प्रत्यर्थी-प्रतिवादी और उसके परिवार के पास अन्य दो दुकानें हैं, जिनमें उसके पिता व अन्य परिवारजन व्यवसाय कर रहे हैं, अन्यथा भी प्रत्यर्थी-प्रतिवादी अन्यत्र दुकान लेकर अपना व्यवसाय कर सकता है । अतः वादग्रस्त दुकान की बेदखली नहीं होने की दशा में अपीलार्थी-वादी को तुलनात्मक रूप से अधिक असुविधा होना अवश्यंभावी है । किराएशुदा परिसर का आंशिक निष्कासन संभव नहीं होने के बाबत् कोई विवाद नहीं है । इस तरह विद्वान् विचारण न्यायालय तथा विद्वान् प्रथम अपीलीय न्यायालय के निष्कर्ष गंभीर रूप से त्रुटिपूर्ण एवं साक्ष्य के विपरीत की श्रेणी में आते हैं जो स्थिर रहने योग्य नहीं है, बल्कि दावा वादी डिक्री होने योग्य है ।

21. उपरोक्त विवेचन के फलस्वरूप प्रस्तुत द्वितीय अपील स्वीकार की जाती है । अपीलाधीन प्रथम अपीलीय न्यायालय एवं विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एवं डिक्री अपास्त किए जाते हैं । अपीलार्थी-वादी का दावा के विरुद्ध प्रत्यर्थी-प्रतिवादी निम्न प्रकार डिक्री किया जाता है :–

1. अपीलार्थी-वादी, प्रत्यर्थी-प्रतिवादी को किराएशुदा वादग्रस्त दुकान से बेदखल कर उसका खाली कब्जा प्राप्त करने का अधिकारी है ।

2. प्रत्यर्थी-प्रतिवादी, अपीलार्थी-वादी को आज से दो माह की अवधि में वादग्रस्त दुकान का खाली कब्जा सुपुर्द करेगा ।

3. प्रत्यर्थी-प्रतिवादी वादग्रस्त परिसर का खाली कब्जा अपीलार्थी-वादी को सुपुर्द करने तक वर्तमान में देय किराया दर के अनुसार किराया अदा करेगा ।

4. वाद व्यय दोनों पक्ष अपना-अपना वहन करेंगे ।

अपील मंजूर की गई ।

मही./अस./क.

कमल

बनाम

श्रीमती वर्षा

(2021 की डी. बी. सिविल प्रकीर्ण अपील सं. 1037)

तारीख 16 नवंबर, 2021

न्यायमूर्ति संदीप मेहता और न्यायमूर्ति समीर जैन

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 96 [सपठित हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13ख] – पक्षकारों द्वारा पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद के लिए वाद फाइल करने की छह माह की कानूनी अवधि का उपबंध होना – कानूनी अवधि में छूट दिए जाने की मांग करना – यदि न्यायालय का यह समाधान हो जाता कि पक्षकारों ने पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद के लिए वाद फाइल किया है और उनके द्वारा प्रस्तुत तथ्य सुसंगत है तो न्यायालय वाद फाइल करने में कानूनी अवधि को माफ कर सकता है और पक्षकारों को छह मास की कानूनी अवधि से छूट देते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित कर सकता है ।

संक्षेप में तथ्य इस प्रकार है कि तारीख 24 अगस्त, 2021 को अपीलार्थी और प्रत्यर्थी ने हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13ख के अधीन यह कहते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए आवेदन फाइल किया है कि उनका विवाह तारीख 29 अप्रैल, 2016 को उदयपुर में हिन्दू रीति-रिवाज के अनुसार अनुष्ठापित हुआ है । यद्यपि उनके विवाह के पश्चात् उनके बीच वैचारिक मतभेद और संबंध इस हद तक पहुंच गए हैं कि संबंधों की वापसी होना संभव नहीं है । परिणामस्वरूप, अपीलार्थी और प्रत्यर्थी तारीख 29 जनवरी, 2019 से पृथक्-पृथक् रूप से रह रहे हैं । अतः पति-पत्नी ने यह निर्णय लिया कि उन्हें शांतिपूर्वक रहना चाहिए और उन्होंने पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद के लिए आवेदन फाइल किया किन्तु कुटुम्ब न्यायालय ने आवेदन इस आधार पर नामंजूर

कर दिया कि पारस्परिक सहमति से आवेदन फाइल करने की छह माह की कानूनी अवधि व्यतीत नहीं हुई है । इससे व्यथित होकर वर्तमान अपील फाइल की गई है । न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13ख के अधीन अंतर्वलित कानूनी उपबंधों का परिशीलन करने पर, हम उपरोक्त उद्धृत निर्णय के सुसंगत भागों को, मामले के तथ्यों और संबंधित पक्षकारों द्वारा किए गए अनुरोध पर, हमारा यह मत है कि यह एक स्वीकृत स्थिति है कि पिछले 2 वर्षों से अर्थात् तारीख 29 जनवरी, 2019 से, पक्षकार पृथक् रूप रह रहे हैं, उन्होंने तारीख 24 अगस्त, 2021 को हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13ख के अधीन एक आवेदन फाइल किया है, पक्षकारों ने करार किया है और आपसी सामंजस्य से अपने विवाह का पारस्परिक रूप से विघटन करने के लिए निबंधनों और शर्तों पर सहमति बनाई है, जोधपुर के कुटुंब न्यायालय सं. 1 इसमें पीठासीन अधिकारी की उपस्थिति के कारण खाली पड़ा है और अतिरिक्त कार्यभार और भारी लंबितता के कारण मामले में सुनवाई की अगली तारीख 28 फरवरी, 2022 दी गई है । यह माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा बार-बार और निर्णयों की श्रृंखला में अभिनिर्धारित किया गया है कि हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13ख(2) के अधीन आदेशात्मक नहीं है किंतु निर्देशिका है । यदि मध्यस्थता, सुलह के सभी प्रयत्न किए गए हैं और कोई सफलता नहीं मिली है और पक्षकारों के बीच संबंधों की वापसी नहीं हुई है तो विवाह को बचाया नहीं जा सकता है, पक्षकारों ने वास्तव में अपने मतभेदों को जिसमें भरणपोषण सहित और ऐसे मामले में लंबित विवाद्यकों को सुलझा लिया है, इस प्रकार उनकी पीड़ा की प्रतीक्षा अवधि लंबी होगी, इसलिए हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13ख(2) के अधीन वैधानिक अवधि की छूट न्याय के हित में होगी । उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13ख के अधीन अवधि की छूट के लिए आवेदन पर विचार करने के लिए, तारीख प्रदान करने हेतु तारीख 23 सितंबर, 2021 के आक्षेपित आदेश को अपास्त और अभिखंडित करते हुए वर्तमान अपील मंजूर की जाती है और 28 फरवरी, 2022 की तारीख नियत की जाती है । मामले के तथ्यों और

परिस्थितियों में, हम यह निदेश देते हैं कि हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13ख के अधीन उपबंधों के अधीन अनुबंधित छह मास की सांविधिक अवधि की छूट दी जाती है और पक्षकारों के मध्य आपसी सहमति को ध्यान में रखते हुए हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13ख के अधीन पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद के लिए निर्णय और डिक्री पारित की जाती है । पक्षकारों को 22 नवंबर, 2021 को विद्वान् कुटुंब न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने का निदेश दिया जाता है और बिना किसी विफल रहे बिना अविलंब उपरोक्त निदेशों के तत्पश्चात् संबंधित कुटुंब न्यायालय विधि के अनुसार विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करेगा । हम इस माननीय न्यायालय के अधिकारक्षेत्र के भीतर सभी विद्वान् कुंटुब न्यायलयों को निदेश देते हैं कि वे ऊपर दिए गए उच्चतम न्यायालय के निर्णयों के आलोक में हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13ख के अधीन विवादों को शीघ्रता से निपटाए जाने और न्याय के उद्देश्य को बिना किसी विफलता के पूरा करें । (पैरा 11, 12, 13, 14 और 15)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2017]	(2017) 8 एस. सी. सी. 746 : **अमरदीप सिंह** बनाम **हरवीन कौर** ;	5, 8
[2012]	(2012) 8 एस. सी. सी. 580 : **देवेन्द्र सिंह नरूला** बनाम **मीनाक्षी नांगीया** ।	9

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2021 की डी. बी. सिविल प्रकीर्ण अपील सं. 1037.

कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 13 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री भीम कांत व्यास

प्रत्यर्थी की ओर से सुश्री/श्रीमती वर्षा, व्यक्तिगत रूप से उपस्थित

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति समीर जैन ने दिया ।

न्या. जैन – वर्तमान अपील, 2021 के सिविल मूलवाद सं. 563 में विद्वान् न्यायाधीश कुटुंब न्यायालय सं. 1 के जोधपुर द्वारा तारीख 23 सितंबर, 2021 को पारित आदेश से उद्भूत हुई है जिसमें पक्षकारों ने हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "अधिनियम, 1955" कहा गया है) की धारा 13ख के अधीन यथाउपबंधित छह मास की समयावधि की छूट की ईप्सा की थी और उसे न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था ।

2. तारीख 24 अगस्त, 2021 को अपीलार्थी और प्रत्यर्थी ने अधिनियम, 1955 की धारा 13ख के अधीन यह कहते हुए आवेदन फाइल किया था कि उनका विवाह तारीख 29 अप्रैल, 2016 को उदयपुर में हिन्दू रीति-रिवाज के अनुसार अनुष्ठापित हुआ था । यद्धपि उनके विवाह के पश्चात् उनके बीच वैचारिक मतभेद और संबंध इस सीमा तक खराब हो गए थे कि संबंधों में सुधार होना संभव नहीं था । परिणामस्वरूप, अपीलार्थी और प्रत्यर्थी तारीख 29 जनवरी, 2019 से पृथक् रूप से रह रहे हैं । अन्ततः पति-पत्नी ने यह विनिश्चय किया कि उन्हें शांतिपूर्वक पृथक् हो जाना चाहिए ।

3. दोनों पक्षकार इस पारस्परिक सहमति पर पहुंचे कि वे प्रतिकर, स्त्रीधन, स्थावर और अस्थावर संपत्ति के संबंध में किसी प्रकार की धन राशि का दावा नहीं करेंगे और श्री कमल विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान करने के समय 15 लाख रुपए की एकमुश्त धनराशि का संदाय भरणपोषण के रूप में श्रीमती वर्षा को चैक/डिमांड ड्राफ्ट/आर.टी.जी.एस. द्वारा करेंगे ।

4. इस संबंध में एक आवेदन पति-पत्नी द्वारा पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद के लिए हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13ख के अधीन फाइल किया गया और वह तारीख 15 सितंबर, 2021 को कुटुंब न्यायालय सं. 1, जोधपुर के समक्ष सूचीबद्ध हुआ । विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, तारीख 28 फरवरी, 2022 को मामला सूचीबद्ध किया कि जोधपुर में कार्यरत तीन कुटुंब न्यायालयों

में से एक न्यायालय बंद पड़ा है और अत्यधिक लंबित होने के कारण, आवेदन का निपटारा होना संभव नहीं है ।

5. तारीख 23 सितंबर, 2021 को उच्चतम न्यायालय के **अमरदीप सिंह** बनाम **हरवीन कौर**[1] वाले मामले को ध्यान में रखते हुए, जो तथ्यों और परिस्थितियों में लागू होता है, अधिनियम, 1955 की धारा 13ख के अधीन छह मास की अवधि की छूट को स्थगित कर दिया गया और मामले की सुनवाई के लिए तारीख 18 फरवरी, 2022 निर्धारित की गई । इसलिए, वर्तमान अपील छह मास की कानूनी अवधि की छूट की ईप्सा करते हुए कुटुंब न्यायालय के अधिनियम की धारा 19 के अधीन फाइल की गई है क्योंकि विवाह का विघटन आपसी सहमति से होना है ।

6. सुनवाई के दौरान, प्रत्यर्थी श्रीमती वर्षा व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुई और अपीलार्थी का प्रतिनिधित्व अधिवक्ता श्री भीम कांत व्यास द्वारा किया गया । उन दोनों ने संयुक्त रूप से शीघ्रताशीघ्र अधिनियम, 1955 की धारा 13ख के अधीन कानूनी अवधि की छूट के लिए, उनके अनुरोधों पर विचार करने की प्रार्थना की । इस पृष्ठभूमि में, पक्षकारों की प्रार्थना तथा तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, हमने शीघ्रतापूर्वक कार्यवाहियां की हैं और हम वर्तमान अपील में आदेश पारित करने को आनत हैं ।

7. वर्तमान अपील का विनिश्चय करने के अनुक्रम में, हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13ख के उपबंधों पर विचार करना महत्वपूर्ण है, जो नीचे निम्न प्रकार पुरःस्थापित किए जाते हैं :–

> "**13ख. पारस्परिक सम्मति से विवाह-विच्छेद** – (1) इस अधिनियम के उपबंधों के अधिनियम के अधीन रहते हुए यह है कि विवाह के दोनों पक्षकार मिलकर विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिए अर्जी, चाहे ऐसा विवाह, विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम, 1976 के प्रारंभ के पूर्व या उसके पश्चात् अनुष्ठापित किया गया हो, जिला न्यायालय में, इस आधार पर पेश

[1] (2017) 8 एस. सी. सी. 746.

कर सकेंगे कि वे एक वर्ष या उससे अधिक समय से अलग-अलग रह रहे हैं और वे एक साथ नहीं रह सके हैं तथा वे इस बात के लिए परस्पर सहमत हो गए हैं कि विवाह का विघटन कर दिया जाना चाहिए ।

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट अर्जी के पेश किए जाने की तारीख से छह मास के पश्चात् और उस तारीख से अठारह मास के पूर्व दोनों पक्षकारों द्वारा किए गए प्रस्ताव पर, यदि इस बीच अर्जी वापस नहीं ले ली गई है तो, न्यायालय पक्षकारों को सुनने के पश्चात् और ऐसी जांच करने के पश्चात्, जो वह ठीक समझे, अपना यह समाधान कर लेने पर कि विवाह अनुष्ठापित हुआ है और अर्जी में किए गए प्रकथन सही हैं, यह घोषणा करते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करेगा कि विवाह डिक्री की तारीख से विघटित हो जाएगा ।"

8. माननीय उच्चतम न्यायालय के **अमरदीप सिंह** बनाम **हरवीन कौर** (उपरोक्त) वाले निर्णय पर विचार करना महत्वपूर्ण है जिसका सुसंगत पैरा इस प्रकार है :–

"15. हमने अंतर्वलित विवाद्यकों पर उचित विचार किया है । पारम्परिक हिन्दू विधि के अधीन, जैसा कि इस बिंदु पर वैधानिक विधि से पहले था, विवाह एक संस्कार है और इसका सहमति से विघटन नहीं किया जा सकता । इस अधिनियम के अधीन न्यायालय सांविधिक आधारों पर विवाह का विघटन करने के लिए समर्थ है । वर्ष 1976 के संशोधन द्वारा पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद की उपधारणा पुरःस्थापित की गई है । तथापि, धारा 13ख(2), पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद याचिका को फाइल करने के पश्चात् छह मास की समय अवधि की समाप्ति के पूर्व विवाह-विच्छेद को वर्जित करती है । उक्त अवधि का अधिनियमन पक्षकारों को पुनर्विचार करने हेतु समर्थ बनाने के लिए किया गया था ताकि न्यायालय आपसी सहमति से विवाह-विच्छेद को तभी मंजूरी दे सके जब सुलह का कोई अवसर न हो ।

16. प्रावधान का उद्देश्य पक्षकारों की सहमति से विवाह विघटित करने में समर्थ बनाना है यदि विवाह असाध्य रूप से टूट गया है और उपलब्ध विकल्पों के अनुसार उन्हें पुनर्वास करने में सक्षम बनाना है । इस संशोधन का उद्देश्य यह है कि अनिच्छुक पक्षकारों के बीच वैवाहिक स्थिति को जबरन बनाए रखने से कोई लाभ नहीं होगा । प्रतीक्षा अवधि का उद्देश्य जल्दबाजी में लिए गए निर्णय से बचना था । क्योंकि उनके बीच मतभेदों को दूर करने की संभावना हो सकती है । उसका उद्देश्य अर्थहीन विवाह को कायम रखना या सुलह का कोई अवसर नहीं होने पर पक्षकारों की पीड़ा को लंबा खीचना नहीं था । यदि पुनर्मिलन की कोई संभावना नहीं है और पुनर्वास की संभावना है तब विवाह को बचाने के लिए हर संभव प्रयास करना चाहिए, और न्यायालय को पक्षकारों को उत्तम विकल्प देने में संकोच नहीं करना चाहिए ।

17. यह अवधारित करने में कि क्या यह उपबंध आज्ञापक है या निदेशात्मक, केवल भाषा ही सदैव निर्णायक नहीं होती है । न्यायालय को उपबंध के संदर्भ, उसकी विषयवस्तु और उद्देश्य पर विचार करना चाहिए । इस सिद्धांत का उल्लेख न्यायमूर्ति श्री. जी. पी. सिंह द्वारा लिखित पुस्तक प्रिन्सिपल्स ऑफ स्टेट्च्यूटरी इन्टरप्रटेशन (2004 का 9वां संस्करण) में किया गया है और इसका अनुमोदन कैलाश बनाम ननकू वाले मामले में निम्न प्रकार किया गया है –

> 'इस विषय पर कई मामलों के अध्ययन से भी कोई सार्वभौमिक नियम प्राप्त नहीं होता है, सिवाय इसके कि प्रायः केवल भाषा ही निर्णायक नहीं होती है और प्रश्नगत कानूनी उपबंध के संदर्भ, विषयवस्तु और उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही तय किया जाना चाहिए कि यह आज्ञापक है या निदेशात्मक एक बार उद्धृत पैरा में लॉर्ड कैंपबेल ने कहा इस संबंध में कोई सार्वभौमिक नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है कि आज्ञापक अधिनियमों को केवल निदेशात्मक

माना जाएगा या अवज्ञा के लिए एक विवक्षित अशक्तता के साथ अनिवार्य है । यह न्यायालयों का कर्तव्य है कि वे अधिकारिक माने जाने वाले कानून के भीतर सावधानी से विधायिका के वास्तविक आशय को प्राप्त करने का प्रयास करें ।

विधायिका के वास्तविक आशय को स्पष्ट करने के लिए न्यायमूर्ति जुब्बाराव का यह मत है, कि न्यायालय अन्य बातों के साथ-साथ कानून की प्रकृति और रूपरेखा पर विचार कर सकता है और इससे निकलने वाले परिणामों पर भी जिससे अन्य उपबंधों के अनुपालन की आवश्यकता से बचा जा सकता है ; अर्थात् उपबंधों के गैर अनुपालन की आकस्मिकता जैसी परिस्थितियां ; उपबंधों के गैर-अनुपालन के लिए शास्ति दी गई है या नहीं ; गंभीर या तुच्छ परिणाम जो उससे उद्भूत होते हैं, और इन सबसे पहले, इस पर विचार करना होगा कि क्या इससे कानून का उद्देश्य पराजित किया जाता है तो इसे आज्ञापक माना जाएगा, जबकि यदि इसे आज्ञापक मानने से निर्दोष व्यक्तियों को गंभीर रूप से साधारण असुविधा अधिनियम के उद्देश्य को बहुत आगे बढ़ाए बिना असुविधा पैदा होगी तो इसे निर्देशिका के रूप में माना जाएगा ।'

18. उपरोक्त बातों को वर्तमान स्थिति में लागू करने पर, हमारा यह मत है कि जहां न्यायालय का किसी मामले में विचार करने पर यह समाधान हो जाता है कि मामला धारा 13ख(2) के अधीन संवैधानिक अवधि की छूट दी जा सकती है तब वह निम्नलिखित पर विचार करने के पश्चात् ऐसा कर सकता है –

(i) धारा 13ख(1) के अधीन पक्षकारों के पृथक्करण के पश्चात् एक वर्ष की कानूनी अवधि के अतिरिक्त धारा 13ख(2) में विनिर्दिष्ट छह मास की कानूनी अवधि प्रथम प्रस्ताव के पूर्व ही समाप्त हो चुकी है ।

(ii) पक्षकारों के पुनर्मिलाप के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XXXIIA, नियम 3/अधिनियम की धारा 23(2)/कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 9 के निबंधनों में मध्यस्थता/सुलह के सभी प्रयास असफल हो चुके हैं और उस दिशा में आगे किसी भी प्रयास के सफल होने की संभावना नहीं है ।

(iii) पक्षकारों ने वास्तव में भरणपोषण भत्ता, बच्चे की अभिरक्षा या पक्षकारों के बीच किसी भी अन्य लंबित मुद्दों सहित मतभेदों को सुलझा लिया है ;

(iv) प्रतीक्षा अवधि को लंबा खीचना उनकी पीड़ा को बढ़ाएगा ।

21. चूंकि हमारा मत यह है कि धारा 13ख(2) में उल्लिखित अवधि अनिवार्य नहीं है किंतु निर्देशिका अनिवार्य है, जहां पक्षकारों के बीच फिर से साथ रहने की सम्भावना नहीं है बल्कि वैकल्पिक पुनर्वास की सम्भावना है वहां न्यायालय प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अपने विवेक का प्रयोग करने के लिए स्वतंत्र होगा ।

22. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि न्यायालय ऐसी कार्यवाहियों के संचालन में विडियो कान्फ्रेंसिंग का भी उपयोग कर सकता है और माता-पिता या भाई-बहन जैसे करीबी संबंधों के माध्यम से पक्षकारों के वास्तविक प्रतिनिधित्व की अनुमति भी दे सकता है जहां कोई पक्ष किसी उचित या विधिमान्य कारण से व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने में असमर्थ है ताकि न्याय के हित को आगे बढ़ाने के लिए न्यायालय का समाधान हो सके ।

9. माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **देवेन्द्र सिंह नरूला** बनाम **मीनाक्षी नांगीया**[1] वाले मामले की उल्लिखित युक्ति विचारणीय है जिसका सुसंगत पैरा निम्नलिखित पुनः प्रस्तुत किया जाता है :–

---

[1] (2012) 8 एस. सी. सी. 580.

"12. अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से यह स्पष्ट हो जाता है कि हालांकि पक्षकारों के मध्य विवाह तारीख 26 मार्च, 2011 को अनुष्ठापित हुआ था, याची ने विवाह के तीन महीने के भीतर विवाह की डिक्री शून्य करने हेतु हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 12 के अधीन याचिका फाइल की थी । तत्पश्चात् वे एक साथ नहीं रह पाए और 1 वर्ष से अधिक समय से पृथक् रूप से रह रहे हैं । वास्तव में, ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों पक्षकारों के बीच कोई वैवाहिक संबंध नहीं है । उपरोक्त अधिनियम की धारा 13ख(2) के मात्र उपबंध ही पक्षकारों के बीच विवाह के औपचारिक बंधन को बनाए हुए हैं । कम से कम पारस्परिक सहमति से विवाह के विघटन की डिक्री की मंजूरी के लिए धारा 13ख में उपदर्शित शर्तें तत्काल मामले में मौजूद हैं । यह केवल छह मास की कानूनी प्रतीक्षा अवधि के कारण ही है कि पक्षकारों को विवाह के विघटन की डिक्री पारित होने की प्रतिक्षा करनी पड़ती है ।

13. उपरोक्त परिस्थितियों में, हमारी राय में, यह मामला उन मामलों में से एक हैं जहां हम संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन उच्चतम न्यायालय की निहित शक्तियों का प्रयोग करते हैं । विवाह प्रतीक्षा की सांविधिक अवधि के कारण एक कच्चे धागे से बंधा हुआ है, जिसमें से चार मास पहले ही समाप्त हो चुके हैं । जब पक्षकारों के लिए एक साथ रहना और एक दूसरे के प्रति अपने वैवाहिक दायित्व का एक वर्ष से अधिक समय तक निभाना संभव नहीं होता है तो हमें पक्षकारों की पीड़ा को और दो मास तक जारी रखने का कोई कारण दिखाई नहीं देता है ।

14. तद्नुसार, हम अपील मंजूर करते हैं और हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 12 के अधीन लंबित कार्यवाहियों को अतिरिक्त जिला न्यायाधीश-01, पश्चिमी दिल्ली के समक्ष, पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 13ख के अधीन परिवर्तित करते हैं और संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग

करते हुए, हम पक्षकारों को पारस्परिक विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करते हैं और यह निदेश देते हैं कि पक्षकारों के बीच विवाह पारस्परिक सहमति से विघटित हो जाएगा । पश्चिमी दिल्ली के अतिरिक्त जिला न्यायाधीश-01 के समक्ष कार्यवाहियां 2012 के हिन्दू विवाह अधिनियम सं. 204 के नाते पक्षकारों की सहमति पर इस न्यायालय का ध्यान खींचा है और इस आदेश से याचिका का निपटारा किया गया है ।"

10. तारीख 9 नवंबर, 2021 को विनिश्चित 2021 की एस. बी. सी. डब्ल्यू. पी. सं. 15518 में इस न्यायालय के नवीनतम निर्णय के प्रति भी निर्देश किया जा सकता है :–

"13. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हए, विशिष्ट रूप से तथ्य यह है कि पक्षकार पर्याप्त रूप से शिक्षित हैं और अपने अधिकारों के बारे में जानते हैं – याची (पत्नी) एक प्राइवेट नौकरी में कार्यरत हैं और प्रत्यर्थी (पति) एक व्यवसाय चला रहा है । जैसा कि उन्होंने बताया उनके बीच सुलह की आशा/संभावना न होने के कारण उन्होंने अपने वैवाहिक संबंधों को पारस्परिक रूप से समाप्त करने का निर्णय लिया है, मेरा यह मत है कि उनका आवेदन 1955 के अधिनियम की धारा 13ख(2) के अधीन विनिर्दिष्ट छह मास की कानूनी अवधि की छूट के लिए योग्य है ।

14. इसलिए इस रिट याचिका को मंजूर किया जाता है । निचले न्यायालय द्वारा तारीख 8 सितंबर, 2021 को पारित आक्षेपित आदेश को अपास्त किया जाता है और उनके तारीख 8 सितंबर, 2021 के आवेदन को एतद्द्वारा मंजूर किया जाता है । 1955 के अधिनियम की धारा 13(2) के अधीन विशिष्ट छह मास की कानूनी विधि को एतद्द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 द्वारा इस न्यायालय को उपलब्ध असाधारण शक्ति का प्रयोग करने में छूट दी जाती है ।"

11. हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13ख के अधीन अंतर्वलित कानूनी उपबंधों, उपरोक्त उद्धृत निर्णय के सुसंगत भागों, मामले के तथ्यों और संबंधित पक्षकारों द्वारा किए गए अनुरोधों का परिशीलन करने पर, हमारा यह मत है कि यह एक स्वीकृत प्रास्थिति है कि पिछले 2 वर्षों से अर्थात् तारीख 29 जनवरी, 2019 से, पक्षकार पृथक् रूप से रह रहे हैं, उन्होंने तारीख 24 अगस्त, 2021 को हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13ख के अधीन एक आवेदन फाइल किया है, पक्षकारों ने करार किया है और आपसी सामंजस्य से अपने विवाह का पारस्परिक रूप से विघटन करने के लिए निबंधनों और शर्तों पर सहमति बनाई है, पीठासीन अधिकारी की अनुपस्थिति के कारण कुटुंब न्यायालय सं. 1 जोधपुर का पद रिक्त पड़ा है और अतिरिक्त कार्यभार एवं भारी संख्या में लम्बित मामलों के कारण, इस मामले में सुनवाई की अगली तारीख 28 फरवरी, 2022 दी गई है ।

12. माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा समय-समय पर और कई निर्णयों में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13ख(2) आज्ञापक नहीं है अपितु निदेशात्मक है । यदि मध्यस्थता, सुलह के सभी प्रयास किए गए हैं और कोई सफलता नहीं मिली है और पक्षकारों के बीच संबंधों की पुनःवापसी नहीं हुई है तो विवाह को बचाया नहीं जा सकता है, वास्तव में यदि पक्षकारों ने अपने मतभेदों को जिसमें भरणपोषण सहित अन्य ऐसे लंबित मुद्दे सम्मिलित हैं, को वस्तुतः सुलझा लिया है, तो लम्बित अवधि उनकी पीड़ा को बढ़ाएगी ही, इसलिए हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13ख(2) के अधीन कानूनी अवधि की छूट देना न्याय के हित में होगा ।

13. उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13ख के अधीन अवधि की छूट के लिए आवेदन पर विचार करने के लिए, तारीख प्रदान करने हेतु तारीख 23 सितंबर, 2021 के आक्षेपित आदेश को अपास्त और अभिखंडित करते हुए वर्तमान अपील मंजूर की जाती है और 28 फरवरी, 2022 की तारीख नियत की जाती है । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हम यह निदेश देते

हैं कि हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13ख के अधीन उपबंधों के अधीन अनुबंधित छह मास कानूनी अवधि की छूट प्रदान की जाए और पक्षकारों के मध्य आपसी सहमति को ध्यान में रखते हुए हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13ख के अधीन पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद के लिए निर्णय और डिक्री पारित की जाए ।

14. पक्षकारों को तारीख 22 नवंबर, 2021 को विद्वान् कुटुंब न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने का निदेश दिया जाता है, जिसके उपरांत संबंधित कुटुंब न्यायालय विधि के अनुसरण में और उपर्युक्त निदेशों के अनुसार विवाह-विच्छेद की डिक्री अविलम्ब पारित करेगा ।

15. हम यह भी निदेश देते हैं कि इस माननीय न्यायालय के क्षेत्राधिकार के भीतर आने वाले सभी विद्वान् कुटुंब न्यायालय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों के प्रकाश में, और न्याय के हित में विलम्ब किए बिना तत्परतापूर्वक हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13ख के अधीन विवादों का निपटारा करेंगे ।

अपील मंजूर की गई ।

मही./क.

संसद् के अधिनियम

राजभाषा अधिनियम, 1963

(यथासंशोधित, 1967)

(1963 का अधिनियम संख्यांक 19)

[10 मई, 1963]

उन भाषाओं का, जो संघ के राजकीय प्रयोजनों, संसद् में कार्य के संव्यवहार, केंद्रीय और राज्य अधिनियमों और उच्च न्यायालयों में कतिपय प्रयोजनों के लिए प्रयोग में लाई जा सकेंगी, उपबंध करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के चौदहवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

1. **संक्षिप्त नाम और प्रारंभ** – (1) यह अधिनियम राजभाषा अधिनियम, 1963 कहा जा सकेगा ।

(2) धारा 3, जनवरी, 1965 के 26वें दिन को प्रवृत्त होगी और इस अधिनियम के शेष उपबंध उस तारीख[1] को प्रवृत्त होंगे जिसे केंद्रीय सरकार, शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे और इस अधिनियम के विभिन्न उपबंधों के लिए विभिन्न तारीख नियत की जा सकेंगी ।

---

[1] तारीख 10 जनवरी, 1965 को धारा 5(1) प्रवृत्त हुई, देखिए भारत का राजपत्र (अंग्रेजी) भाग 2, अनुभाग 3(ii), पृष्ठ 128 पर प्रकाशित अधिसूचना सं. का. आ. 94, तारीख 4 जनवरी, 1965 ; तारीख 19 मई, 1969 को धारा 6 प्रवृत्त हुई, देखिए भारत का राजपत्र (अंग्रेजी) भाग 2, अनुभाग (3)(ii), पृष्ठ 2024 पर प्रकाशित अधिसूचना सं. का. आ. 1945, तारीख 14 मई, 1969 ; तारीख 7 मार्च, 1970 को धारा 7 प्रवृत्त हुई, देखिए भारत का राजपत्र (अंग्रेजी), भाग 2, अनुभाग 3(ii) में प्रकाशित अधिसूचना सं. का. आ. 841, तारीख 2 फरवरी, 1970 ; तारीख 1 अक्तूबर, 1976 को धारा 5(2) प्रवृत्त हुई, देखिए भारत का राजपत्र (अंग्रेजी) भाग 2, अनुभाग 3(ii) पृष्ठ 1901 पर प्रकाशित अधिसूचना सं. का. आ. 655(अ), तारीख 5 अक्तूबर, 1976 ।

2. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "नियत दिन" से, धारा 3 के संबंध में, जनवरी, 1965 का 26वां दिन अभिप्रेत है और इस अधिनियम के किसी अन्य उपबंध के संबंध में वह दिन अभिप्रेत है जिस दिन को वह उपबंध प्रवृत्त होता है ;

(ख) "हिन्दी" से वह हिन्दी अभिप्रेत है जिसकी लिपि देवनागरी है ।

[1][3. **संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए और संसद् में प्रयोग के लिए अंग्रेजी भाषा का बना रहना** – (1) संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की कालावधि की समाप्ति हो जाने पर भी, हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा, नियत दिन से ही, –

(क) संघ के उन सब राजकीय प्रयोजनों के लिए जिनके लिए यह उस दिन से ठीक पहले प्रयोग में लाई जाती थी ; तथा

(ख) संसद् में कार्य के संव्यवहार के लिए,

प्रयोग में लाई जाती रह सकेगी :

परंतु संघ और किसी ऐसे राज्य के बीच, जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, पत्रादि के प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा प्रयोग में लाई जाएगी :

परंतु यह और कि जहां किसी ऐसे राज्य के, जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में अपनाया है और किसी अन्य राज्य के, जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, बीच पत्रादि के प्रयोजनों के लिए हिन्दी को प्रयोग में लाया जाता है, वहां हिन्दी में ऐसे पत्रादि के साथ-साथ उसका अनुवाद अंग्रेजी भाषा में भेजा जाएगा :

परंतु यह और भी कि इस उपधारा की किसी भी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह किसी ऐसे राज्य को, जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, संघ के साथ या किसी ऐसे राज्य के साथ, जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में अपनाया है,

---

[1] 1968 के अधिनियम सं. 1 की धारा 2 द्वारा धारा 3 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

या किसी अन्य राज्य के साथ, उसकी सहमति से, पत्रादि के प्रयोजनों के लिए हिन्दी को प्रयोग में लाने से निवारित करती है, और ऐसे किसी मामले में उस राज्य के साथ पत्रादि के प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग बाध्यकर न होगा ।

(2) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, जहां पत्रादि के प्रयोजनों के लिए हिन्दी या अंग्रेजी भाषा –

(i) केंद्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग या कार्यालय के और दूसरे मंत्रालय या विभाग या कार्यालय के बीच ;

(ii) केंद्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग या कार्यालय के और केंद्रीय सरकार के स्वामित्व में के या नियंत्रण में के किसी निगम या कंपनी या उसके किसी कार्यालय के बीच ;

(iii) केंद्रीय सरकार के स्वामित्व में के या नियंत्रण में के किसी निगम या कंपनी या उसके किसी कार्यालय के और किसी अन्य ऐसे निगम या कंपनी या कार्यालय के बीच,

प्रयोग में लाई जाती है वहां उस तारीख तक, जब तक पूर्वोक्त संबंधित मंत्रालय, विभाग, कार्यालय या निगम या कंपनी का कर्मचारिवृन्द हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेता, ऐसे पत्रादि का अनुवाद, यथास्थिति, अंग्रेजी भाषा या हिन्दी में भी दिया जाएगा ।

(3) उपधारा (1) में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, हिन्दी और अंग्रेजी भाषा दोनों ही –

(i) संकल्पों, साधारण आदेशों, नियमों, अधिसूचनाओं, प्रशासनिक या अन्य प्रतिवेदनों या प्रेस विज्ञप्तियों के लिए, जो केंद्रीय सरकार द्वारा या उसके किसी मंत्रालय, विभाग या कार्यालय द्वारा या केंद्रीय सरकार के स्वामित्व में के या नियंत्रण में के किसी निगम या कंपनी द्वारा या ऐसे निगम या कंपनी के किसी कार्यालय द्वारा निकाले जाते हैं या किए जाते हैं ;

(ii) संसद् के किसी सदन या सदनों के समक्ष रखे गए प्रशासनिक तथा अन्य प्रतिवेदनों और राजकीय कागजपत्रों के लिए ;

(iii) केंद्रीय सरकार या उसके किसी मंत्रालय, विभाग या कार्यालय द्वारा या उसकी ओर से या केंद्रीय सरकार के स्वामित्व में के या नियंत्रण में के किसी निगम या कंपनी द्वारा या ऐसे निगम या कंपनी के किसी कार्यालय द्वारा निष्पादित संविदाओं और करारों के लिए तथा निकाली गई अनुज्ञप्तियों, अनुज्ञापत्रों, सूचनाओं और निविदा प्ररूपों के लिए,

प्रयोग में लाई जाएगी ।

(4) उपधारा (1) या उपधारा (2) या उपधारा (3) के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना यह है कि केंद्रीय सरकार धारा 8 के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा उस भाषा या उन भाषाओं का उपबंध कर सकेगी जिसे या जिन्हें संघ के राजकीय प्रयोजन के लिए, जिसके अंतर्गत किसी मंत्रालय, विभाग, अनुभाग या कार्यालय का कार्यकरण है, प्रयोग में लाया जाना है और ऐसे नियम बनाने में राजकीय कार्य के शीघ्रता और दक्षता के साथ निपटारे का तथा जनसाधारण के हितों का सम्यक् ध्यान रखा जाएगा और इस प्रकार बनाए गए नियम विशिष्टतया यह सुनिश्चित करेंगे कि जो व्यक्ति संघ के कार्यकलाप के संबंध में सेवा कर रहे हैं और जो या तो हिन्दी में या अंग्रेजी भाषा में प्रवीण हैं वे प्रभावी रूप से अपना काम कर सकें और यह भी कि केवल इस आधार पर कि वे दोनों ही भाषाओं में प्रवीण नहीं हैं उनका कोई अहित नहीं होता है ।

(5) उपधारा (1) के खंड (क) के उपबंध और उपधारा (2), उपधारा (3) और उपधारा (4) के उपबंध तब तक प्रवृत्त बने रहेंगे जब तक उनमें वर्णित प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग समाप्त कर देने के लिए ऐसे सभी राज्यों के विधान-मंडलों द्वारा, जिन्होंने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, संकल्प पारित नहीं कर दिए जाते और जब तक पूर्वोक्त संकल्पों पर विचार कर लेने के पश्चात् ऐसी समाप्ति के लिए संसद् के हर एक सदन द्वारा संकल्प पारित नहीं कर दिया जाता ।]

4. **राजभाषा के संबंध में समिति** – (1) जिस तारीख को धारा 3 प्रवृत्त होती है उससे दस वर्ष की समाप्ति के पश्चात्, राजभाषा के संबंध में एक समिति, इस विषय का संकल्प संसद् के किसी भी सदन में

राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी से प्रस्तावित और दोनों सदनों द्वारा पारित किए जाने पर गठित की जाएगी ।

(2) इस समिति में तीस सदस्य होंगे जिनमें से बीस लोक सभा के सदस्य होंगे तथा दस राज्य सभा के सदस्य होंगे, जो क्रमशः लोक सभा के सदस्यों तथा राज्य सभा के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित होंगे ।

(3) इस समिति का कर्तव्य होगा कि वह संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए हिन्दी के प्रयोग में की गई प्रगति का पुनर्विलोकन करे और उस पर सिफारिशें करते हुए, राष्ट्रपति को प्रतिवेदन करे और राष्ट्रपति उस प्रतिवेदन को संसद् के हर एक सदन के समक्ष रखवाएगा और सभी राज्य सरकारों को भिजवाएगा ।

(4) राष्ट्रपति उपधारा (3) में निर्दिष्ट प्रतिवेदन पर और उस पर राज्य सरकारों ने यदि कोई मत अभिव्यक्त किए हों तो उन पर विचार करने के पश्चात् उस समस्त प्रतिवेदन के या उसके किसी भाग के अनुसार निदेश निकाल सकेगा :

[1][परंतु इस प्रकार निकाले गए निदेश धारा 3 के उपबंधों से असंगत नहीं होंगे ।]

5. **केन्द्रीय अधिनियमों आदि का प्राधिकृत हिन्दी अनुवाद** – (1) नियत दिन को और उसके पश्चात् शासकीय राजपत्र में राष्ट्रपति के प्राधिकार से प्रकाशित –

(क) किसी केंद्रीय अधिनियम का या राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित किसी अध्यादेश का, अथवा

(ख) संविधान के अधीन या किसी केंद्रीय अधिनियम के अधीन निकाले गए किसी आदेश, नियम, विनियम या उपविधि का,

हिन्दी में अनुवाद उसका हिन्दी में प्राधिकृत पाठ समझा जाएगा ।

(2) नियत दिन से ही उन सब विधेयकों के, जो संसद् के किसी भी सदन में पुरःस्थापित किए जाने हों और उन सब संशोधनों के, जो उनके

---

[1] 1968 के अधिनियम सं. 1 की धारा 3 द्वारा अंतःस्थापित ।

संबंध में संसद् के किसी भी सदन में प्रस्तावित किए जाने हों, अंग्रेजी भाषा के प्राधिकृत पाठ के साथ-साथ उनका हिन्दी में अनुवाद भी होगा जो ऐसी रीति से प्राधिकृत किया जाएगा, जो इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित की जाए ।

6. **कतिपय दशाओं में राज्य अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी अनुवाद** – जहां किसी राज्य के विधान-मंडल ने उस राज्य के विधान-मंडल द्वारा पारित अधिनियमों में अथवा उस राज्य के राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित अध्यादेशों में प्रयोग के लिए हिन्दी से भिन्न कोई भाषा विहित की है वहां, संविधान के अनुच्छेद 348 के खंड (3) द्वारा अपेक्षित अंग्रेजी भाषा में उसके अनुवाद के अतिरिक्त, उसका हिन्दी में अनुवाद उस राज्य के शासकीय राजपत्र में, उस राज्य के राज्यपाल के प्राधिकार से, नियत दिन को या उसके पश्चात् प्रकाशित किया जा सकेगा और ऐसी दशा में ऐसे किसी अधिनियम या अध्यादेश का हिन्दी में अनुवाद हिन्दी भाषा में उसका प्राधिकृत पाठ समझा जाएगा ।

7. **उच्च न्यायालय के निर्णयों आदि में हिन्दी या अन्य राजभाषा का वैकल्पिक प्रयोग** – नियत दिन से ही या तत्पश्चात् किसी भी दिन से किसी राज्य का राज्यपाल, राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से, अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिन्दी या उस राज्य की राजभाषा का प्रयोग, उस राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा पारित या दिए गए किसी निर्णय, डिक्री या आदेश के प्रयोजनों के लिए प्राधिकृत कर सकेगा और जहां कोई निर्णय, डिक्री या आदेश (अंग्रेजी भाषा से भिन्न) ऐसी किसी भाषा में पारित किया या दिया जाता है वहां उसके साथ-साथ उच्च न्यायालय के प्राधिकार से निकाला गया अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद भी होगा ।

8. **नियम बनाने की शक्ति** – (1) केंद्रीय सरकार इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम, शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, बना सकेगी ।

[1][(2) इस धारा के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में

---

[1] 1986 के अधिनियम सं. 4 की धारा 2 और अनुसूची द्वारा (15.5.1986 से) उपधारा (2) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में, अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् यह निष्प्रभाव हो जाएगा । किन्तु नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।]

9. **कतिपय उपबंधों का जम्मू-कश्मीर को लागू न होना** – धारा 6 और धारा 7 के उपबंध जम्मू-कश्मीर राज्य को लागू न होंगे ।

गृह मंत्रालय के दिनांक 18 जनवरी, 1968 का संकल्प संख्यांक एफ. 5/8/65-रा.भा.

संकल्प

संख्यांक एफ. 5/8/65 – रा. भा. – संसद् के दोनों सदनों में पारित निम्नलिखित सरकारी संकल्प आम जानकारी के लिए प्रकाशित किया जाता है :–

"जबकि संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार संघ की राजभाषा हिन्दी रहेगी और उसके अनुच्छेद 351 के अनुसार हिन्दी भाषा की प्रसार वृद्धि करना और उसका विकास करना ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके, संघ का कर्तव्य है ;

यह सभा संकल्प करती है कि हिन्दी के प्रसार एवं विकास की गति बढ़ाने के हेतु तथा संघ के विभिन्न राजकीय प्रयोजनों के लिए उत्तरोत्तर इसके प्रयोग के हेतु भारत सरकार द्वारा एक अधिक गहन एवं व्यापक कार्यक्रम तैयार किया जाएगा और उसे कार्यान्वित किया जाएगा और किए जाने वाले उपायों एवं की जाने वाली प्रगति की विस्तृत

वार्षिक मूल्यांकन रिपोर्ट संसद् की दोनों सभाओं के पटल पर रखी जाएगी, और सब राज्य सरकारों को भेजी जाएगी ;

2. जबकि संविधान की आठवीं अनुसूची में हिन्दी के अतिरिक्त भारत की 14 मुख्य भाषाओं का उल्लेख किया गया है, और देश की शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि इन भाषाओं के पूर्ण विकास के हेतु सामूहिक उपाय किए जाने चाहिए ;

यह सभा संकल्प करती है कि हिन्दी के साथ-साथ सब भाषाओं के समन्वित विकास के हेतु भारत सरकार द्वारा राज्य सरकारों के सहयोग से एक कार्यक्रम तैयार किया जाएगा और उसे कार्यान्वित किया जाएगा ताकि वे शीघ्र समृद्ध हों और आधुनिक ज्ञान के संचार का प्रभावी माध्यम बनें ;

3. जबकि एकता की भावना के संवर्द्धन तथा देश के विभिन्न भागों में जनता में संचार की सुविधा के हेतु यह आवश्यक है कि भारत सरकार द्वारा राज्य सरकारों के परामर्श से तैयार किए गए त्रै-भाषा सूत्र को सभी राज्यों में पूर्णतया कार्यान्वित करने के लिए प्रभावी उपाय किए जाने चाहिए ;

यह सभा संकल्प करती है कि हिन्दी-भाषी क्षेत्रों में, हिन्दी तथा अंग्रेजी के अतिरिक्त एक आधुनिक भारतीय भाषा के दक्षिण भारत की भाषाओं में से किसी एक को तरजीह देते हुए और अहिन्दी-भाषी क्षेत्रों में प्रादेशिक भाषाओं एवं अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी के अध्ययन के लिए उस सूत्र के अनुसार प्रबन्ध किया जाना चाहिए ;

4. और जबकि यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि संघ की लोक सेवाओं के विषय में देश के विभिन्न भागों के लोगों के न्यायोचित दावों और हितों का पूर्ण परित्राण किया जाए ;

यह सभा संकल्प करती है :–

(क) कि उन विशेष सेवाओं अथवा पदों को छोड़कर जिनके लिए

ऐसी किसी सेवा अथवा पद के कर्तव्यों के संतोषजनक निष्पादन के हेतु केवल अंग्रेजी अथवा केवल हिन्दी अथवा दोनों जैसी कि स्थिति हो, का उच्च-स्तर का ज्ञान आवश्यक समझा जाए, संघ सेवाओं अथवा पदों के लिए भर्ती करने के हेतु उम्मीदवारों के चयन के समय हिन्दी अथवा अंग्रेजी में से किसी एक का ज्ञान अनिवार्यतः अपेक्षित होगा ; और

(ख) कि परीक्षाओं की भावी योजना, प्रक्रिया संबंधी पहलुओं एवं समय के विषय में संघ लोक सेवा आयोग के विचार जानने के पश्चात् अखिल भारतीय एवं उच्चतर केंद्रीय सेवाओं संबंधी परीक्षाओं के लिए संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित सभी भाषाओं तथा अंग्रेजी को वैकल्पिक माध्यम के रूप में रखने की अनुमति होगी ।"

नियम

राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) नियम, 1976

(यथासंशोधित, 1987, 2007 तथा 2011)

सा. का. नि. 1052 – राजभाषा अधिनियम, 1963 (1963 का 19) की धारा 3 की उपधारा (4) के साथ पठित धारा 8 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, केंद्रीय सरकार निम्नलिखित नियम बनाती है, अर्थात् :–

1. **संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ** – (क) इन नियमों का संक्षिप्त नाम राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) नियम, 1976 है ।

(ख) इनका विस्तार तमिलनाडु राज्य के सिवाय संपूर्ण भारत पर है ।

(ग) ये राजपत्र में प्रकाशन की तारीख* को प्रवृत्त होंगे ।

2. **परिभाषाएं** – इन नियमों में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो :–

(क) "अधिनियम" से राजभाषा अधिनियम, 1963 (1963 का 19) अभिप्रेत है ;

(ख) "केंद्रीय सरकार के कार्यालय" के अन्तर्गत निम्नलिखित भी है, अर्थात् :–

(क) केंद्रीय सरकार का कोई मंत्रालय, विभाग या कार्यालय ;

(ख) केंद्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किसी आयोग, समिति या अधिकरण का कोई कार्यालय ; और

---

* 17 जुलाई, 1976, देखिए अधिसूचना सं. सा.का.नि. 1052, तारीख 28-6-1976 – भारत का राजपत्र, भाग 2, खंड 3 (i), तारीख 17-7-1976, पृष्ठ 1967.

(ग) केंद्रीय सरकार के स्वामित्व में या नियंत्रण के अधीन किसी निगम या कंपनी का कोई कार्यालय ;

(ग) "कर्मचारी" से केंद्रीय सरकार के कार्यालय में नियोजित कोई व्यक्ति अभिप्रेत है ;

(घ) "अधिसूचित कार्यालय" से नियम 10 के उपनियम (4) के अधीन अधिसूचित कार्यालय अभिप्रेत है ;

(ङ) "हिन्दी में प्रवीणता" से नियम 9 में वर्णित प्रवीणता अभिप्रेत है ;

(च) क्षेत्र "क" से बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, उत्तराखंड, राजस्थान और उत्तर प्रदेश राज्य तथा अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, दिल्ली संघ राज्यक्षेत्र अभिप्रेत हैं ;

(छ) क्षेत्र "ख" से गुजरात, महाराष्ट्र और पंजाब राज्य तथा चण्डीगढ़, दमण और दीव तथा दादरा और नगर हवेली संघ राज्यक्षेत्र अभिप्रेत हैं ;

(ज) क्षेत्र "ग" से खण्ड (च) और (छ) में निर्दिष्ट राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों से भिन्न राज्य तथा संघ राज्यक्षेत्र अभिप्रेत हैं ;

(झ) "हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान" से नियम 10 में वर्णित कार्यसाधक ज्ञान अभिप्रेत है ।

3. **राज्यों आदि और केंद्रीय सरकार के कार्यालयों से भिन्न कार्यालयों के साथ पत्रादि** – (1) केंद्रीय सरकार के कार्यालय से क्षेत्र "क" में किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र को या ऐसे राज्य या संघ राज्यक्षेत्र में किसी कार्यालय (जो केंद्रीय सरकार का कार्यालय न हो) या व्यक्ति को पत्रादि, असाधारण दशाओं को छोड़कर हिन्दी में होंगे और यदि उनमें से किसी को कोई पत्रादि अंग्रेजी में भेजे जाते हैं तो उनके साथ उनका हिन्दी अनुवाद भी भेजा जाएगा ।

(2) केंद्रीय सरकार के कार्यालय से –

(क) क्षेत्र "ख" में किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र को या ऐसे राज्य या संघ राज्यक्षेत्र में किसी कार्यालय (जो केंद्रीय सरकार का कार्यालय न हो) को पत्रादि सामान्यतया हिन्दी में होंगे और यदि इनमें से किसी को कोई पत्रादि अंग्रेजी में भेजे जाते हैं तो उनके साथ उनका हिन्दी अनुवाद भी भेजा जाएगा :

परन्तु यदि कोई ऐसा राज्य या संघ राज्यक्षेत्र यह चाहता है कि किसी विशिष्ट वर्ग या प्रवर्ग के पत्रादि या उसके किसी कार्यालय के लिए आशयित पत्रादि सम्बद्ध राज्य या संघ राज्यक्षेत्र की सरकार द्वारा विनिर्दिष्ट अवधि तक अंग्रेजी या हिन्दी में भेजे जाएं और उसके साथ दूसरी भाषा में उसका अनुवाद भी भेजा जाए तो ऐसे पत्रादि उसी रीति से भेजे जाएंगे ;

(ख) क्षेत्र "ख" के किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति को पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी में भेजे जा सकते हैं ।

(3) केंद्रीय सरकार के कार्यालय से क्षेत्र "ग" में किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र को या ऐसे राज्य में किसी कार्यालय (जो केंद्रीय सरकार का कार्यालय न हो) या व्यक्ति को पत्रादि अंग्रेजी में होंगे ।

(4) उपनियम (1) और (2) में किसी बात के होते हुए भी, क्षेत्र "ग" में केंद्रीय सरकार के कार्यालय से क्षेत्र "क" या क्षेत्र "ख" में किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र को या ऐसे राज्य में किसी कार्यालय (जो केंद्रीय सरकार का कार्यालय न हो) या व्यक्ति को पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी में हो सकते हैं :

परंतु हिन्दी में पत्रादि ऐसे अनुपात में होंगे जो केन्द्रीय सरकार ऐसे कार्यालयों में हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की संख्या, हिन्दी में पत्रादि भेजने की सुविधाओं और उससे आनुषंगिक बातों को ध्यान में रखते हुए समय-समय पर अवधारित करे ।

4. **केंद्रीय सरकार के कार्यालयों के बीच पत्रादि** –

(क) केंद्रीय सरकार के किसी एक मंत्रालय या विभाग और किसी दूसरे मंत्रालय या विभाग के बीच पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी में हो सकते हैं ;

(ख) केंद्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग और क्षेत्र "क" में स्थित संलग्न या अधीनस्थ कार्यालयों के बीच पत्रादि हिन्दी में होंगे और ऐसे अनुपात में होंगे जो केंद्रीय सरकार, ऐसे कार्यालयों में हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की संख्या, हिन्दी में पत्रादि भेजने की सुविधाओं और उससे संबंधित आनुषंगिक बातों को ध्यान में रखते हुए, समय-समय पर अवधारित करे ;

(ग) क्षेत्र "क" में स्थित केंद्रीय सरकार के ऐसे कार्यालयों के बीच, जो खण्ड (क) या खण्ड (ख) में विनिर्दिष्ट कार्यालयों से भिन्न हैं, पत्रादि हिन्दी में होंगे ;

(घ) क्षेत्र "क" में स्थित केंद्रीय सरकार के कार्यालयों और क्षेत्र "ख" या क्षेत्र "ग" में स्थित केंद्रीय सरकार के कार्यालयों के बीच पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी में हो सकते हैं :

परंतु ये पत्रादि हिन्दी में ऐसे अनुपात में होंगे जो केन्द्रीय सरकार ऐसे कार्यालयों में हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की संख्या, हिन्दी में पत्रादि भेजने की सुविधाओं और उससे आनुषंगिक बातों को ध्यान में रखते हुए समय-समय पर अवधारित करे ;

(ङ) क्षेत्र "ख" या क्षेत्र "ग" में स्थित केंद्रीय सरकार के कार्यालयों के बीच पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी में हो सकते हैं :

परन्तु ये पत्रादि हिन्दी में ऐसे अनुपात में होंगे जो केन्द्रीय सरकार ऐसे कार्यालयों में हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की संख्या, हिन्दी में पत्रादि भेजने की सुविधाओं और उससे आनुषंगिक बातों को ध्यान में रखते हुए समय-समय पर अवधारित करे :

परन्तु जहां ऐसे पत्रादि –

(i) क्षेत्र "क" या क्षेत्र "ख" किसी कार्यालय को संबोधित हैं वहां, यदि आवश्यक हो तो, उनका दूसरी भाषा में अनुवाद, पत्रादि प्राप्त करने के स्थान पर किया जाएगा ;

(ii) क्षेत्र "ग" में किसी कार्यालय को संबोधित है वहां उनका, दूसरी भाषा में अनुवाद, उनके साथ भेजा जाएगा :

परन्तु यह और कि यदि कोई पत्रादि किसी अधिसूचित कार्यालय को सम्बोधित है तो दूसरी भाषा में ऐसा अनुवाद उपलब्ध कराने की अपेक्षा नहीं की जाएगी ।

5. **हिन्दी में प्राप्त पत्रादि के उत्तर** – नियम 3 और नियम 4 में किसी बात के होते हुए भी, हिन्दी में पत्रादि के उत्तर केंद्रीय सरकार के कार्यालय से हिन्दी में दिए जाएंगे ।

6. **हिन्दी और अंग्रेजी दोनों का प्रयोग** – अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (3) में निर्दिष्ट सभी दस्तावेजों के लिए हिन्दी और अंग्रेजी दोनों का प्रयोग किया जाएगा और ऐसे दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्तियों का यह उत्तरदायित्व होगा कि वे यह सुनिश्चित कर लें कि ऐसी दस्तावेजें हिन्दी और अंग्रेजी दोनों ही में तैयार की जाती हैं, निष्पादित की जाती हैं और जारी की जाती हैं ।

7. **आवेदन, अभ्यावेदन, आदि** – (1) कोई कर्मचारी आवेदन, अपील या अभ्यावेदन हिन्दी या अंग्रेजी में कर सकता है ।

(2) जब उपनियम (1) में विनिर्दिष्ट कोई आवेदन, अपील या अभ्यावेदन हिन्दी में किया गया हो या उस पर हिन्दी में हस्ताक्षर, किए गए हों, तब उसका उत्तर हिन्दी में दिया जाएगा ।

(3) यदि कोई कर्मचारी यह चाहता है कि सेवा संबंधी विषयों (जिनके अन्तर्गत अनुशासनिक कार्यवाहियां भी हैं) से संबंधित कोई आदेश या सूचना, जिसका कर्मचारी पर तामील किया जाना अपेक्षित है, यथास्थिति, हिन्दी या अंग्रेजी में होनी चाहिए तो वह उसे असम्यक् विलम्ब के बिना उसी भाषा में दी जाएगी ।

8. **केंद्रीय सरकार के कार्यालयों में टिप्पणों का लिखा जाना** – (1) कोई कर्मचारी किसी फाइल पर टिप्पण या कार्यवृत्त हिन्दी या अंग्रेजी में लिख सकता है और उससे यह अपेक्षा नहीं की जाएगी कि वह उसका अनुवाद दूसरी भाषा में प्रस्तुत करे ।

(2) केंद्रीय सरकार का कोई भी कर्मचारी, जो हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखता है, हिन्दी में किसी दस्तावेज़ के अंग्रेजी अनुवाद की मांग तभी कर सकता है, जब वह दस्तावेज़ विधिक या तकनीकी प्रकृति की है, अन्यथा नहीं ।

(3) यदि यह प्रश्न उठता है कि कोई विशिष्ट दस्तावेज़ विधिक या तकनीकी प्रकृति की है या नहीं तो विभाग या कार्यालय का प्रधान उसका विनिश्चय करेगा ।

(4) उपनियम (1) में किसी बात के होते हुए भी, केंद्रीय सरकार, आदेश द्वारा ऐसे अधिसूचित कार्यालयों को विनिर्दिष्ट कर सकती है जहां ऐसे कर्मचारियों द्वारा, जिन्हें हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त है, टिप्पण, प्रारूपण और ऐसे अन्य शासकीय प्रयोजनों के लिए, जो आदेश में विनिर्दिष्ट किए जाएं, केवल हिन्दी का प्रयोग किया जाएगा ।

9. **हिन्दी में प्रवीणता** – यदि किसी कर्मचारी ने –

(क) मैट्रिक परीक्षा या उसकी समतुल्य या उससे उच्चतर कोई परीक्षा हिन्दी के माध्यम से उत्तीर्ण कर ली है ; या

(ख) स्नातक परीक्षा में अथवा स्नातक परीक्षा की समतुल्य या उससे उच्चतर किसी अन्य परीक्षा में हिन्दी को एक वैकल्पिक विषय के रूप में लिया हो ; या

(ग) यदि वह इन नियमों से उपाबद्ध प्ररूप में यह घोषणा करता है कि उसे हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त है ;

तो उसके बारे में यह समझा जाएगा कि उसने हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त कर ली है ।

10. **हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान** – (1) (क) यदि किसी कर्मचारी ने –

(i) मैट्रिक परीक्षा या उसकी समतुल्य या उससे उच्चतर परीक्षा हिन्दी विषय के साथ उत्तीर्ण कर ली है ; या

(ii) केंद्रीय सरकार की हिन्दी प्रशिक्षण योजना के अन्तर्गत आयोजित प्राज्ञ परीक्षा या, यदि उस सरकार द्वारा किसी विशिष्ट प्रवर्ग के पदों के संबंध में उस योजना के अन्तर्गत कोई निम्नतर परीक्षा विनिर्दिष्ट है, वह परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है ; या

(iii) केंद्रीय सरकार द्वारा उस निमित्त विनिर्दिष्ट कोई अन्य परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है ; या

(ख) यदि वह इन नियमों से उपाबद्ध प्ररूप में यह घोषणा करता है कि उसने ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लिया है ;

तो उसके बारे में यह समझा जाएगा कि उसने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है ।

(2) यदि केंद्रीय सरकार के किसी कार्यालय में कार्य करने वाले कर्मचारियों में से अस्सी प्रतिशत ने हिन्दी का ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लिया है तो उस कार्यालय के कर्मचारियों के बारे में सामान्यतया यह समझा जाएगा कि उन्होंने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है ।

(3) केंद्रीय सरकार या केंद्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त विनिर्दिष्ट कोई अधिकारी यह अवधारित कर सकता है कि केंद्रीय सरकार के किसी कार्यालय के कर्मचारियों ने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है या नहीं ।

(4) केंद्रीय सरकार के जिन कार्यालयों में कर्मचारियों ने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है उन कार्यालयों के नाम राजपत्र में अधिसूचित किए जाएंगे :

परन्तु यदि केंद्रीय सरकार की राय है कि किसी अधिसूचित कार्यालय में काम करने वाले और हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले कर्मचारियों का प्रतिशत किसी तारीख में से उपनियम (2) में विनिर्दिष्ट प्रतिशत से कम हो गया है, तो वह राजपत्र में अधिसूचना द्वारा घोषित

कर सकती है कि उक्त कार्यालय उस तारीख से अधिसूचित कार्यालय नहीं रह जाएगा ।

11. **मैनुअल, संहिताएं, प्रक्रिया संबंधी अन्य साहित्य, लेखन सामग्री, आदि** – (1) केंद्रीय सरकार के कार्यालयों से संबंधित सभी मैनुअल, संहिताएं और प्रक्रिया संबंधी अन्य साहित्य हिन्दी और अंग्रेजी में द्विभाषीय रूप में यथास्थिति, मुद्रित या साइक्लोस्टाइल किया जाएगा और प्रकाशित किया जाएगा ।

(2) केंद्रीय सरकार के किसी कार्यालय में प्रयोग किए जाने वाले रजिस्टरों के प्ररूप और शीर्षक हिन्दी और अंग्रेजी में होंगे ।

(3) केंद्रीय सरकार के किसी कार्यालय में प्रयोग के लिए सभी नामपट्ट, सूचना पट्ट, पत्रशीर्ष और लिफाफों पर उत्कीर्ण लेख तथा लेखन सामग्री की अन्य मदें हिन्दी और अंग्रेजी में लिखी जाएंगी, मुद्रित या उत्कीर्ण होंगी :

परन्तु यदि केंद्रीय सरकार ऐसा करना आवश्यक समझती है तो वह, साधारण या विशेष आदेश द्वारा, केंद्रीय सरकार के किसी कार्यालय को इस नियम के सभी या किन्हीं उपबन्धों से छूट दे सकती है ।

12. **अनुपालन का उत्तरदायित्व** – (1) केंद्रीय सरकार के प्रत्येक कार्यालय के प्रशासनिक प्रधान का यह उत्तरदायित्व होगा कि वह –

(i) यह सुनिश्चित करे कि अधिनियम और इन नियमों के उपबन्धों उपनियम (2) के अधीन जारी किए गए निदेशों का समुचित रूप से अनुपालन हो रहा है ; और

(ii) इस प्रयोजन के लिए उपयुक्त और प्रभावकारी जांच के लिए उपाय करें ।

(2) केंद्रीय सरकार अधिनियम और इन नियमों के उपबन्धों के सम्यक् अनुपालन के लिए अपने कर्मचारियों और कार्यालयों को समय-समय पर आवश्यक निदेश जारी कर सकती है ।

———————

प्ररूप

(नियम 9 और 10 देखिए)

मैं इसके द्वारा यह घोषणा करता हूं कि निम्नलिखित के आधार पर *मुझे हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त है/मैंने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है :–

तारीख हस्ताक्षर

* जो लागू न होता हो, उसे कृपया काट दीजिए ।

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रयार्थ उपलब्ध पाठ्य पुस्तकों की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम एवं प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पृष्ठ सं.	पुस्तक की मूल मुद्रित कीमत (रुपयों में)	विशेष छूट के पश्चात् पुस्तक की कीमत (रुपयों में)
1.	अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण) – डा. एस. सी. खरे – 1996	273	115	29.00
2.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) – विधि साहित्य प्रकाशन – 2000	209	225	57.00
3.	विधि शास्त्र – डा. शिवदत्त शर्मा – 2004	501	580	145.00
4.	निर्णय लेखन – न्या. भगवती प्रसाद बेरी – 2019	190	175	–
5.	भारत का सांविधानिक इतिहास - (103वां संशोधन तक) - श्री चन्द्रशेखर मिश्र	340	325	–
6.	भारतीय संविधान के प्रमुख तत्व - डा. प्रद्युम्न कुमार त्रिपाठी	906	750	–

अन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन

1. विधि शब्दावली	सातवां संस्करण, 2015	कीमत रु. 375/-
2. निर्वाचन विधि निर्देशिका (भाग-1 तथा भाग-2)	नवीनतम संस्करण, 2019	कीमत रु. 1,900/-
3. भारत का संविधान	2021	कीमत रु. 300/-

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

Website : www.lawmin.nic.in

Email : am.vsp-molj@gov.in

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 47259/88

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं - **उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका** और **उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका** का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित महत्वपूर्ण निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः सिविल और दांडिक के चयनित महत्वपूर्ण निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत क्रमशः ₹ 2,100/-, ₹ 1,300/- और ₹ 1,300/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें । साथ ही यह भी अवगत कराया जाता है कि केन्द्रीय अधिनियमों, विधि शब्दावली, विधि पत्रिकाओं और अन्य विधि प्रकाशनों को आन लाइन **https://bharatkosh.gov.in/product/product** पर प्राप्त किया जा सकता है ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विक्रेता : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष **:** 011-23385259, 23387589, फैक्स **:** 011-23387589, ई-मेल **:** am.vsp-molj@gov.in